आगमिक चूर्णियाँ और चूर्णिकार

डॉ. मोहनलाल मेहता...

आगमों की प्राचीनतम पद्यात्मक व्याख्याएँ निर्युक्तियों और भाष्यों के रूप में प्रसिद्ध हैं। वे सब प्राकृत में हैं। जैनाचार्य इन पद्यात्मक व्याख्याओं से ही संतुष्ट होने वाले न थे। उन्हें उसी स्तर की गद्यात्मक व्याख्याओं की भी आवश्यकता प्रतीत हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति के रूप में जैन-आगमों पर प्राकृत अथवा संस्कृतिमिश्रित प्राकृत में जो व्याख्याएँ लिखी गई हैं, वे चूर्णियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। आगमेतर साहित्य पर भी कुछ चूर्णियाँ लिखी गई हैं, किन्तु वे आगमों की चूर्णियों की तुलना में बहुत कम हैं। उदाहरण के लिए कर्मप्रकृति, शतक आदि की चूर्णियाँ उपलब्ध हैं।

चूर्णियाँ -

निम्नांकित आगम ग्रंथों पर आचार्यों ने चूर्णियाँ लिखी हैं– १. आचारांग, २. सूतकृत्रांग, ३. व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती), ४. जीवाभिगम, ५. निशीथ, ६. महानिशीथ, ७. व्यवहार, ८. दशाश्रुतस्कन्ध, ९. बृहत्कल्प, १०. पंचकल्प, ११. ओधनिर्युक्ति, १२. जीतकल्प, १३. उत्तराध्ययन, १४. आवश्यक, १५. दशवैकालिक, १६. नंदी, १७. अनुयोगद्वार, १८. जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति। निशीथ और जीतकल्प पर दो–दो चूर्णियाँ लिखी गईं, किन्तु वर्तमान में एक–एक ही उपलब्ध है। अनुयोगद्वार, बृहत्कल्प एवं दशवैकालिक पर भी दो–दो चूर्णियाँ हैं।

चूर्णियों की रचना का क्या क्रम है, इस विषय में निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। चूर्णियों में उल्लिखित एक–दूसरे के नाम के आधार पर क्रम–निर्धारण का प्रयत्न किया जा सकता है। श्री आनन्दसागर सूरि के मत से जिनदासगणिकृत निम्नलिखित चूर्णियों का रचनाक्रम इस प्रकार है--नन्दीचूर्णि, अनुयोगद्वारकचूर्णि, आवश्यकचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि, उत्तराध्ययनचूर्णि, आचारांगचूर्णि, सूत्रकृतांगचूर्णि और व्याख्याप्रज्ञप्तिचूर्णि।[१]

आवश्यकचूर्णि में ओघनिर्युक्तिचूर्णि का उल्लेख है।[२] इससे प्रतीत होता है कि ओधनिर्युक्तिचूर्णि आवश्यकचूर्णि से पूर्व लिखी गई है। दशवैकालिचूर्णि में आवश्यकचूर्णि का नामोल्लेख है।[३] इससे यह सिद्ध होता है कि आवश्यकचूर्णि दशवैकालिक चूर्णि से पूर्व की रचना है। उत्तराध्ययनचूर्णि में दशवैकालिकचूर्णि का निर्देश है[४] जिससे प्रकट होता है कि दशवैकालिकचूर्णि उत्तराध्ययनचूर्णि के पहले लिखी गई है। अनुयोगद्वारचूर्णि में नंदीचूर्णि का उल्लेख किया गया है सिसे सिद्ध होता है कि नंदीचूर्णि की रचना अनुयोगद्वारचूर्णि के पूर्व हुई है। इन उल्लेखों को देखते हुए श्री आनन्दसागर सूरि के मत का समर्थन करना अनुचित नहीं है। हाँ, उपर्युक्त रचनाक्रम में अनुयोगद्वारचूर्णि के बाद तथा आवश्यकचूर्णि के पहले ओघनिर्युक्तिचूर्णि का भी समावेश कर लेना चाहिए, क्योंकि आवश्यकचूर्णि में ओघनिर्युक्तिचूर्णि का उल्लेख है, जो आवश्यकचूर्णि के पूर्व की रचना है।

भाषा की दृष्टि से नन्दीचूर्णि मुख्यतया प्राकृत में है। इसमें संस्कृत का बहुत कम प्रयोग किया गया है। अनुयोगद्वारचूर्णि भी मुख्य रूप से प्राकृत में ही है, जिसमें यत्र–तत्र संस्कृत के श्लोक और गद्यांश उद्‌धृत किए गए हैं। जिनदासकृत दशवैकालिकचूर्णि की भाषा मुख्यतया प्राकृत है, जबकि अगस्त्यसिंहकृत दशवैकालिकचूर्णि प्राकृत में ही है। उत्तराध्यनचूर्णि संस्कृतमिश्रित प्राकृत में है। इसमें अनेक स्थानों पर संस्कृत के श्लोक उद्‌धृत किए गए हैं। आचारांगचूर्णि प्राकृत-प्रधान है, जिसमें यत्र–तत्र संस्कृत के श्लोक भी उद्‌धृत किए गए हैं। सूत्रकृतांगचूर्णि की भाषा एवं शैली आचारांगचूर्णि के ही समान है। इसमें संस्कृत का प्रयोग अन्य चूर्णियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में हुआ है। जीतकल्पचूर्णि में प्रारंभ से अंत तक प्राकृत का ही प्रयोग है। इसमें जितने उद्धरण हैं, वे भी प्राकृत ग्रंथों के हैं। इस दृष्टि से यह चूर्णि अन्य चूर्णियों से विलक्षण है। निशीथविशेषचूर्णि अल्प संस्कृतमिश्रित प्राकृत में है। दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि प्रधानतया प्राकृत में है। बृहत्कल्पचूर्णि संस्कृतमिश्रित प्राकृत में है।

चूर्णिकार

चूर्णिकार के रूप में मुख्यतया जिनदासगणि महत्तर का नाम प्रसिद्ध है। इन्होंने वस्तुतः कितनी चूर्णियाँ लिखी है, इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। परंपरा से निम्नांकित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूर्णियाँ जिनदासगणि महत्तर की कही जाती है-निशीथविशेषचूर्णि, नन्दीचूर्णि, अनुयोगद्वारचूर्णि, आवश्यकचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि, उत्तराध्ययनचूर्णि और सूत्रकृतांगचूर्णि। उपलब्ध जीतकल्पचूर्णि सिद्धसेनसूरि की कृति है। बृहत्कल्पचूर्णिकार का नाम प्रलम्बसूरि है।[६] आचार्य जिनभभद्र की कृतियों में एक चूर्णि का भी समावेश है। यह चूर्णि अनुयोगद्वार के अंगुल पद पर है जिसे जिनदास की अनुयोगद्वार चूर्णि में अक्षरशः उद्धृत किया गया है[७]। इसी प्रकार दशवैकालिक सूत्र पर भी एक और चूर्णि है। इसके रचयिता अगस्त्यसिंह हैं। अन्य चूर्णिकारों के नाम अज्ञात हैं।

जिनदासगणि महत्तर के जीवन-चरित्र से संबंधित विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है। निशीथविशेषचूर्णि के अंत में चूर्णिकार का नाम जिनदास बताया गया है तथा प्रारंभ में उनके विद्यागुरु के रूप में प्रद्युम्न क्षमाश्रमण के नाम का उल्लेख किया गया है। उत्तराध्ययनचूर्णि के अंत में चूर्णिकार का परिचय दिया गया है किन्तु उनके नाम का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। इसमें उनके गुरु का नाम वाणिज्यकुलीन, कोटिकगणीय, वज्रशाखीय गोपालगणि महत्तर बताया गया है। नंदीचूर्णि के अंत में चूर्णिकार ने अपना जो परिचय दिया है वह स्पष्ट रूप में उपलब्ध है। जिनदास के समय के विषय में इतना कहा जा सकता है कि ये भाष्यकार आचार्य जिनभद्र के बाद एवं टीकाकार आचार्य हरिभद्र के पूर्व हुए हैं, क्योंकि आचार्य जिनभद्र के भाष्य की अनेक गाथाओं का उपयोग इनकी चूर्णियों में हुआ है, जबकि आचार्य हरिभद्र ने अपनी टीकाओं में इनकी चूर्णियों का पूरा उपयोग किया है। आचार्य जिनभद्र का समय विक्रम संवत् ६००-६६० के आसपास है[८] तथा आचार्य हरिभद्र का समय वि.सं. ७५७-८२७ के बीच का है।[९] ऐसी दशा में जिनदासगणि महत्तर का समय वि.सं. ६५०-७५० के बीच में मानना चाहिए। नन्दीचूर्णि के अंत में उसका रचनाकाल शक संवत् ५९८ अर्थात् वि.सं. ७३३ निर्दिष्ट है।[१०] इससे भी यही सिद्ध होता है।

उपलब्ध जीतकल्पचूर्णि के कर्ता सिद्धसेनसूरि है। प्रस्तुत सिद्धसेन सिद्धसेन दिवाकर से भिन्न ही कोई आचार्य हैं। इसका कारण यह है कि सिद्धसेन दिवाकर जीतकल्पकार आचार्य जिनभद्र के पूर्ववर्ती हैं प्रस्तुत चूर्णि की एक व्याख्या (विषमपदव्याख्या) श्रीचंद्रसूरि ने वि.सं. १२२७ में पूर्ण की है अतः चूर्णिकार सिद्धसेन वि.सं. १२२७ के पहले होने चाहिए। ये सिद्धसेन कौन हो सकते हैं, इसकी संभावना का विचार करते हुए पं. दलसुख मालवणिया लिखते हैं कि आचार्य जिनभद्र के पश्चात्वर्ती तत्त्वार्थभाष्य-व्याख्याकार सिद्धसेनगणि और उपमितिभवप्रपंचकथा के लेखक सिद्धर्षि अथवा सिद्धव्याख्यानिक-ये दो प्रसिद्ध आचार्य तो प्रस्तुत चूर्णि के लेखक प्रतीत नहीं होते, क्योंकि यह चूर्णि, भाषा का प्रश्न गौण रखते हुए देखा जाए तो भी कहना पड़ेगा कि, बहुत सरल शैली में लिखी गई है, जबकि उपर्युक्त दोनों आचार्यों की शैली अति क्लिष्ट है। दूसरी बात यह है कि इन दोनों आचार्यों की कृतियों में इसकी गिनती भी नहीं की जाती। इससे प्रतीत होता है कि प्रस्तुत जिनभद्रकृत बृहत्क्षेत्रसमास की वृत्ति के रचयिता सिद्धसेनसूरि प्रस्तुत चूर्णि के भी कर्ता होने चाहिए क्योंकि इन्होंने उपर्युक्त वृत्ति वि.सं. ११९२ में पूर्ण की थी। दूसरी बात यह है कि इन सिद्धसेन के अतिरिक्त अन्य किसी सिद्धसेन का इस समय के आसपास होना ज्ञात नहीं होता। ऐसी स्थिति में बृहत्क्षेत्रसमास की वृत्ति के कर्ता और प्रस्तुत चूर्णि के लेखक संभवतः एक ही सिद्धसेन है। यदि ऐसा ही है तो मानना पड़ेगा कि चूर्णिकार सिद्धसेन उपकेशगच्छ के थे तथा देवगुप्तसूरि के शिष्य एवं यशोदेवसूरि के गुरुभाई थे। इन्हीं यशोदेवसूरि ने उन्हें शास्त्रार्थ सिखाया था[११]।

उपर्युक्त मान्यता पर अपना मत प्रकट करते हुए पं. श्री सुखलालजी लिखते हैं कि जीतकल्प एक आगमिक ग्रंथ है। यह देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी चूर्णि के कर्ता कोई आगमिक होने चाहिए। इस प्रकार के एक आगमिक सिद्धसेन क्षमाश्रमण का निर्देश पंचकल्पचूर्णि तथा हारिभद्रीयवृत्ति में है। संभव है कि जीतकल्पचूर्णि के लेखक भी यही सिद्धसेन क्षमाश्रमण हों।[१२] जब तक एतद्विषयक निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं होते तब तक प्रस्तुत चूर्णिकार सिद्धसेन सूरि के विषय में निश्चित रूप से विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता।

पं. दलसुख मालवणिया ने निशीथ-चूर्णि की प्रस्तावना में संभावना की है कि ये सिद्धसेन आचार्य जिनभद्र के साक्षात् शिष्य हों। ऐसा इसलिए संभव है कि जीतकल्पभाष्य चूर्णि का मंगल इस बात की पुष्टि करता है। साथ ही यह भी संभावना की है कि बृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथ भाष्य के भी कर्ता ये हों।[१३]

बृहत्कल्पचूर्णिकार प्रलंबसूरि के जीवनचरित्र पर प्रकाश डालने वाली कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। ताड़पत्र पर लिखित प्रस्तुत चूर्णि की एक प्रति का लेखन-समय वि.सं. १३३४ है।[१४]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः इतना निश्चित है कि प्रलंबसूरि वि.सं. १३३४ के पहले हुए हैं। हो सकता है कि ये चूर्णिकार सिद्धसेन के समकालीन हों अथवा उनसे भी पहले हुए हों।

दशवैकालिकचूर्णिकार अगस्त्यसिंह कोटिगणीय वज्रस्वामी की शाखा के एक स्थविर हैं। इनके गुरु का नाम ऋषिगुप्त है। इनके समय आदि के विषय में प्रकाश डालने वाली कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनकी चूर्णि अन्य चूर्णियों से विशेष प्राचीन नहीं है। इसमें तत्त्वार्थ सूत्र आदि के संस्कृत-उद्धरण भी हैं। चूर्णि के प्रारंभ में ही सम्यग्दर्शनज्ञान (तत्त्वा. अ. १, सू. १) सूत्र उद्धृत किया गया है। शैली आदि की दृष्टि से चूर्णि सरल है।

आगे हम कुछ महत्त्वपूर्ण चूर्णियों के संबंध में प्रकाश डालेंगे।

नन्दीचूर्णि

यही चूर्णि[१५] मूल सूत्रानुसारी है तथा मुख्यतया प्राकृत में लिखी गई है। इसमें यत्र-तत्र संस्कृत का प्रयोग है अवश्य किन्तु वह नहीं के बराबर है। इसकी व्याख्यानशैली संक्षिप्त एवं सारग्राही है। इसमें सर्वप्रथम जिन और वीरस्तुति की व्याख्या की गई है, तदन्तर संघस्तुति की। मूल गाथाओं का अनुसरण करते हुए आचार्य ने तीर्थंकरों, गणधरों और स्थविरों की नामावली भी दी है। इसके बाद तीन प्रकार की पर्षद् की ओर संकेत करते हुए ज्ञानचर्चा प्रारंभ की है। जैनागमों में प्रसिद्ध आभिनिबोधिक (मति), श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल इन पांच प्रकार के ज्ञानों का स्वरूप-वर्णन करने के बाद आचार्य ने प्रत्यक्ष-परोक्ष की स्वरूप-चर्चा की है। केवलज्ञान की चर्चा करते हुए चूर्णिकार ने पंद्रह प्रकार के सिद्धों का भी वर्णन किया है- १. तीर्थसिद्ध, २. अतीर्थसिद्ध, ३. तीर्थंकरसिद्ध, ४. अतीर्थंकरसिद्ध, ५. स्वयंबुद्धसिद्ध, ६. प्रत्येकबुद्धसिद्ध, ७. बुद्धबोधितसिद्ध, ८. स्त्रीलिंगसिद्ध, ९. पुरुषलिंगसिद्ध, १०. नपुंसकलिंगसिद्ध, ११. स्वलिंगसिद्ध, १२. अन्यलिंगसिद्ध, १३. गृहलिंगसिद्ध, १४. एकसिद्ध, १५. अनेकसिद्ध। ये अनन्तसिद्धकेवलज्ञान के भेद हैं। इसी प्रकार केवलज्ञान के परम्परसिद्धकेवलज्ञान आदि अनेक भेदोपभेद हैं। इन सबका मूल सूत्रकार ने स्वयं ही निर्देश किया है।

केवलज्ञान और केवलदर्शन के संबंध की चर्चा करते हुए आचार्य ने तीन मत उद्धृत किए हैं- १. केवलज्ञान और केवलदर्शन का यौगपद्य, २. केवलज्ञान और केवलदर्शन का क्रमिकत्व, ३. केवल ज्ञान और केवलदर्शन का अभेद। एतद्विषयक गाथाएँ इस प्रकार हैं--

केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली णियमा।
अण्णे एगंतरियं इच्छंति सुकवदेसेणं॥1॥
अण्णे ण चेव वीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स।
जं चिय केवलणाणं तं चिय से दंसणं बेंति॥2॥

इन तीनों मतों के समर्थन के रूप में भी कुछ गाथाएँ दी गई हैं। आचार्य ने केवलज्ञान और केवलदर्शन के क्रमभावित्व का समर्थन किया है। एतद्विषयक विस्तृत चर्चा विशेषावश्यकभाष्य में देखनी चाहिए।[१६]

श्रुतनिश्रित, अश्रुतनिश्रित आदि भेदों के साथ आभिनिबोधिकज्ञान का सविस्तर विवेचन करते हुए चूर्णिकार ने श्रुतज्ञान का अति विस्तृत व्याख्यान किया है। इस व्याख्यान में संज्ञीश्रुत, असंज्ञीश्रुत, सम्यक्श्रुत, मिथ्याश्रुत, सादिश्रुत, अनादिश्रुत, गमिकश्रुत, अगमिकश्रुत, अंगप्रविष्टश्रुत, अंगबाह्यश्रुत, उत्कालिकश्रुत, कालिकश्रुत आदि श्रुत के विविध भेदों का समावेश किया गया है। द्वादशांग की आराधना के फल की ओर संकेत करते हुए आचार्य ने निम्न गाथा में अपना परिचय देकर ग्रन्थ समाप्त किया है--

णिरेणगगमत्तणहसदा जिया, पसुपतिसंखगजट्ठिताकुला।
कमट्ठिता धीमतचिंतियक्खरा, फुडं कहेयंतभिधाणकत्तुणो॥1॥

नन्दीचूर्णि (प्रा.टे.सो.) पृ. ८३

अनुयोगद्वारचूर्णि

यह चूर्णि[१७] मूल सूत्र का अनुसरण करते हुए मुख्यतया प्राकृत में लिखी गई है। इसमें संस्कृत का बहुत कम प्रयोग हुआ है। प्रारंभ में मंगल के प्रसंग से भावनंदी का स्वरूप बताते हुए 'णाणं पंचविधं पण्णत्तं' इस प्रकार का सूत्र उद्धृत किया गया है और कहा गया है कि इस सूत्र का जिस प्रकार नंदीचूर्णि में व्याख्यान किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी व्याख्यान कर लेना चाहिए।[१८] इस कथन से स्पष्ट है कि नंदीचूर्णि अनुयोगद्वारचूर्णि से पहले लिखी गई है। प्रस्तुत चूर्णि में आवश्यक, तंदुलवैचारिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि का भी निर्देश किया गया है।[१९] अनुयोगविधि और अनुयोगार्थ का विचार करते हुए चूर्णिकार ने आवश्यकाधिकार पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। आनुपूर्वी का विवेचन करते हुए कालानुपूर्वी के स्वरूप-वर्णन के प्रसंग से आचार्य ने पूर्वांगों का परिचय दिया है। 'णामाणि जाणि' आदि की व्याख्या करते हुए नाम शब्द का कर्म आदि दृष्टियों से विचार किया गया है। सात नामों के रूप में सप्तस्वर का संगीतशास्त्र की दृष्टि से सूक्ष्म विवेचन किया गया है। नवविध नाम का नौ प्रकार के काव्यरस के रूप में सोदाहरण वर्णन किया गया है- वीर, शृंगार, अद्‌भुत, रौद्र, ब्रीडनक, बीभत्स, हास्य, करुण और प्रशांत। इसी प्रकार प्रस्तुत चूर्णि में आत्मांगुल, उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, कालप्रमाण, औदारिकादि शरीर, मनुष्यादि प्राणियों का प्रमाण, गर्भजादि मनुष्यों की संख्या, ज्ञान और प्रमाण, संख्यात, असंख्यात, अनंत आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है।

आवश्यकचूर्णि

यह चूर्णि[२०] मुख्यरूप से निर्युक्ति का अनुसरण करते हुए लिखी गई है। कहीं-कहीं पर भाष्य की गाथाओं का भी उपयोग किया गया है। इसकी भाषा प्राकृत है, किन्तु यत्र-तत्र संस्कृत के श्लोक, गद्यांश एवं पंक्तियाँ उद्‌धृत की गई हैं। भाषा में प्रवाह है। शैली भी ओजपूर्ण है। कथानकों की तो इसमें भरमार है और इस दृष्टि से इसका ऐतिहासिक मूल्य भी अन्य चूर्णियों से अधिक है। विषय-विवेचन का जितना विस्तार इस चूर्णि में है उतना अन्य चूर्णियों में दुर्लभ है। जिस प्रकार इसमें भी प्रत्येक विषय का अति विस्तारपूर्वक व्याख्यान किया गया है। विशेषकर ऐतिहासिक आख्यानों के वर्णन में तो अन्त तक दृष्टि की विशालता एवं लेखनी की उदारता के दर्शन होते हैं। इसमें गोविंदनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्तिचूर्णि (एत्थंतरे ओहनिज्जुत्तिचुन्नी भाणियव्वा जाव सम्मता), वसुदेवहिण्डि आदि अनेक ग्रंथों का निर्देश किया गया है।[२१]

उपोद्‌घातचूर्णि के प्रारंभ में मंगलचर्चा की गई है और भावमंगल के रूप में ज्ञान का विस्तृत विवेचन किया गया है। श्रुतज्ञान के अधिकार को दृष्टि में रखते हुए आवश्यक का निक्षेप-पद्धति से विचार किया गया है। द्रव्यावश्यक और भावावश्यक के विशेष विवेचन के लिए अनुयोगद्वार सूत्र की ओर निर्देश कर दिया गया है।[२२] श्रुतावतार की चर्चा करते हुए चूर्णिकार कहते हैं कि तीर्थंकर भगवान से श्रुत का अवतार होता है। तीर्थंकर कौन होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर चूर्णिकार ने निम्न शब्दों में दिया है - जेहिं एवं दंसणणाणादिसंजुत्तं तित्थं कयं ते तित्थकरा भवंति, अहवा तित्थं गणहरा तं जेहिंकयं ते तित्थकरा, अहवा तित्थं चाउव्वन्नो संघो तं जेहिं कयं ते तित्थकरा। भगवान की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है--भगो जेसिं अत्थि ते भगवंतो। भग क्या है? इसका उत्तर देते हुए चूर्णिकार ने निम्न श्लोक उद्‌धृत किया है--[२३]

माहात्म्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः।
धर्मास्याथ प्रयत्नस्य, पण्णां भग इतींगना॥1॥

सामायिक नामक प्रथम आवश्यक का व्याख्यान करते हुए चूर्णिकार ने सामायिक का दो दृष्टियों से विवेचन किया है-द्रव्यपरंपरा से और भावपरंपरा से। द्रव्यपरंपरा की पुष्टि के लिये यासासासा और मृगावती के आख्यानक दिए हैं।[२४] आचार्य और शिष्य के संबंध की चर्चा करते हुए निम्न श्लोक उद्‌धृत किया है--[२५]

आचार्यस्यैव तज्जाड्यं, यच्छिष्यो नावबुध्यते।
गावो गोपालकेनैव, अतीर्थेनावतारिताः॥1॥

सामायिक का उद्देश, निर्देश, निर्गम आदि २६ द्वारों से विचार करना चाहिए,[२६] इस ओर संकेत करने के बाद आचार्य ने निर्गमद्वार की चर्चा करते हुए भगवान् महावीर के (मिथ्यात्वादि से) निर्गम की ओर संकेत किया है तथा उनके भवों की चर्चा करते हुए भगवान् ऋषभदेव के धनसार्थवाह आदि भवों का विवरण दिया है। ऋषभदेव के जन्म, विवाह, अपत्य आदि का बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन करने के बाद तत्कालीन शिल्प, कर्म, लेख आदि पर भी समुचित प्रकाश डाला है। ऋषभदेव के पुत्र भरत की दिग्विजय का वर्णन करने में तो चूर्णिकार ने सचमुच कमाल कर दिया है। युद्धकला के चित्रण में आचार्य ने सामग्री एवं शैली दोनों दृष्टियों से सफलता प्राप्त की है। चूर्णि के इसी एक अंश से चूर्णिकार के प्रतिपादन-कौशल एवं साहित्यिक अभिरुचि का पता लग सकता है। सैनिकप्रयाण का एक दृश्य देखिए-

असिखेवणिखगचावणाराएकणमकप्पणिसूललउडाभिंडिमालधणुतोणसरपणेहि य कालणीलरुहिरपीतसुविकल्ललअणेगचिंधसयसण्णिविट्ठं अफ्फोडितसीहणायच्छेलितहयहेसितहत्थिगुलुगुलाइतअणेगरहसयसहस्सघणघणेंतणि-हम्ममाण सद्दसहितेण जगमं समकं भंभाहोरंभकिणितखर-मुहिमुगंदसंखीयपरिलिवव्वायपीरव्वायणिवंसवेणुवीणाविपंचिमह तिकच्छभिरिगिसिगिकलतालकंसतालकरधाणुत्थिदेण संनिनादेण सकलमवि जीवलोगं पूरयंते।[२७]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत का राज्याभिषेक, भरत और बाहुबलि का युद्ध, बाहुबलि को केवलज्ञान की प्राप्ति आदि घटनाओं का वर्णन भी आचार्य ने कुशलतापूर्वक किया है। इस प्रकार ऋषभदेव संबंधी वर्णन समाप्त करते हुए चक्रवर्ती, वासुदेव आदि का भी थोड़ा सा परिचय दिया गया है तथा अन्य तीर्थंकरों की जीवनी पर भी किंचित् प्रकाश डाला गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि भगवान् महावीर के पूर्वभव के जीव मरीचि ने किस प्रकार भगवान् ऋषभदेव से दीक्षा ग्रहण की और किस प्रकार परीषहों से भयभीत होकर स्वतंत्र सम्प्रदाय की स्थापना की। इस वर्णन में मूल बातें वही हैं, जो आवश्यक निर्युक्ति में है।[२८]

निर्मगद्वार के प्रसंग से इतनी लंबी चर्चा होने के बाद पुनः भगवान् महावीर का जीवनचरित्र प्रारंभ होता है। मरीचि का जीव किस प्रकार अनेक भवों से भ्रमण करता हुआ ब्राह्मणकुण्डग्राम में देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में आता है, किस प्रकार गर्भापहरण होता है, किस प्रकार राजा सिद्धार्थ के पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है। किस प्रकार सिद्धार्थसुत वर्धमान का जन्माभिषेक किया जाता है आदि बातों का विस्तृत वर्णन करने के बाद आचार्य ने महावीर के कुटुम्ब का भी थोड़ा-सा परिचय दिया है। वह इस प्रकार है[२९]-

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्तेणं, तस्स णं ततो णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा-अम्मापिउसंतिए बद्धमाणे सहसंमुदिते समणे अयलेभयभेरवाणं खंता पडिमासतपारए अरतिरतिसहे दविए धितिविरिय संपन्ने परीसहोवसग्गसहेत्ति देवेहिं से कतं णामं समणे भगवं महावीरे। भगवतो माया चेडगस्स भगिणी, भोयी चेडगस्स धुआ, णाता णाम जे उसभसामिस्स सयाणिज्जगा ते णातवंसा, पित्तिज्जए सुपासे, जेट्ठे भाता णंदिबद्धणे, भगिणी सुदंसणा, भारिया जसोया कोडिन्नागोत्तेणं, धूययाकासवीगोत्तेणं तीसे दो नामधेज्जा, तं. अणोज्जगित्ति वा पियदंसणाविति वा, णत्तुई कोसीगोत्तणं, तीसे दो नामधेज्जा (जसवतीति वा) सेववतीति वा, एवं (यं) नामाहिगारे दरिसितं।

भगवान् महावीर के जीवन से संबंधित निम्न घटनाओं का विस्तृत वर्णन चूर्णिकार ने किया है- धर्मपरीक्षा, विवाह, अपत्य, दान, संबोध, लोकान्तिकागमन, इंद्रागमन, दीक्षामहोत्सव, उपसर्ग, इंद्रप्रार्थना, अभिग्रहपंचक, अच्छंदकवृत्त, चण्डकौशिकवृत्त, गोशालकवृत्त, संगमककृत उपसर्ग, देवीकृत उपसर्ग, वैशाली आदि में विहार, चंदनबालावृत्त, गोपकृत शलाकोपसर्ग, केवलोत्पाद, समवसरण, गणधरदीक्षा आदि। देवीकृत उपसर्ग का वर्णन करते समय आचार्य ने देवियों के रूप-लावण्य, स्वभाव, चापल्य, श्रृंगार-सौंदर्य आदि का सरस एवं सफल चित्रण किया है। इसी प्रकार भगवान् के देह-वर्णन में भी आचार्य ने अपना साहित्य-कौशल दिखाया है।

क्षेत्र, काल आदि शेष द्वारों का व्याख्यान करते हुए चूर्णिकार ने नयाधिकार के अंतर्गत वज्रस्वामी का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है और यह बताया है कि आर्य वज्र के बाद होने वाले आर्य रक्षित ने कालिक का अनुयोग पृथक् कर दिया है। इस प्रसंग पर आर्य रक्षित का जीवन-चरित्र भी दे दिया गया है। आर्य रक्षित के मातुल गोष्ठामाहिल का वृत्त देते हुए यह बताया गया है कि वह भगवान् महावीर के शासन में सप्तम निह्नव के रूप में प्रसिद्ध हुआ। जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ़, अश्वमित्र, गंगसूरि और षडुलूक- ये छह निह्नव गोष्ठामाहिल के पूर्व हो चुके थे। इन सातों निह्नवों के वर्णन में चूर्णिकार ने निर्युक्तिकार का अनुसरण किया है। साथ ही भाष्यकार का अनुसरण करते हुए चूर्णिकार ने अष्टम निह्नव के रूप में बोटिक-दिगंबर का वर्णन किया है और कथानक के रूप में भाष्य की गाथा उद्धृत की है।[३०]

इसके बाद आचार्य ने सामायिकसंबंधी अन्य आवश्यक बातों का विचार किया है, जैसे सामायिक के द्रव्य-पर्याय, नयदृष्टि से सामायिक, सामायिक के भेद, सामायिक का स्वामी, सामायिक-प्राप्ति का क्षेत्र, काल, दिशा आदि, सामायिक की प्राप्ति करने वाला, सामायिक की प्राप्ति के हेतु, एतद्विषयक आनंद, कामदेव आदि के दृष्टांत, अनुकम्पा आदि हेतु और मेंठ, इन्द्रनाग, कृतपुण्य, पुण्यशाल, शिवराजर्षि, गंगदत्त, दशार्णभद्र, इलापुत्र आदि के उदाहरण सामायिक की स्थिति, सामायिकवालों की संख्या, सामायिक का अंतर, सामायिक का आकर्ष, समभाव के लिए दमदन्त का दृष्टांत, समता के लिए मेतार्य का उदाहरण, समास के लिए चिलातिपुत्र का दृष्टांत, संक्षेप और अनबद्ध के लिए तपस्वी और धर्मरुचि के उदाहरण, प्रत्याख्यान के लिए तेतलीपुत्र का दृष्टांत। यहाँ तक उपोद्घातनिर्युक्ति की चूर्णि का अधिकार है।

सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्ति की चूर्णि में निम्न विषयों का प्रतिपादन किया गया है- नमस्कार की उत्पत्ति, निक्षेपादि, राग के निक्षेप,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्नेहराग के लिए अरहन्नक का दृष्टांत, द्वेष के निक्षेप और धर्मरुचि का दृष्टांत, कषाय के निक्षेप और जमदग्न्यादि के उदाहरण, अर्हन्नमस्कार का फल, सिद्धनमस्कार और कर्म सिद्धादि, औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी बुद्धि, कर्मक्षय और समुद्घात, अयोगिगुणस्थान और योगनिरोध, सिद्धों का सुख, अवगाह आदि, आचार्यनमस्कार, उपाध्यायनमस्कार, साधुनमस्कार, नमस्कार का प्रयोजन आदि यहाँ तक नमस्कारनिर्युक्ति की चूर्णि का अधिकार है।

सामायिकनिर्युक्ति की चूर्णि में 'करेमि' इत्यादि पदों की पदच्छेदपूर्वक व्याख्या की गई है तथा छह प्रकार के करण का विस्तृत निरूपण किया गया है। यहाँ तक सामायिक - चूर्णि का अधिकार है।

सामायिक अध्ययन की चूर्णि समाप्त करने के बाद आचार्य ने द्वितीय अध्ययन चतुर्विंशतिस्तव पर प्रकाश डाला है। इसमें निर्युक्ति का ही अनुसरण करते हुए स्तव, लोक, उद्योत, धर्म, तीर्थंकर आदि पदों का निक्षेप-पद्धति से व्याख्यान किया गया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभ का स्वरूप बताते हुए चूर्णिकार कहते हैं-- वृष उद्वहने, उब्बूढं तेन भगवता जगत्संसारभग्गं तेन ऋषभ इति, सर्व एव भगवन्तो जग[illegible]त अतुलं नाणदंसणचरितं वा, एते सामण्णं वा, विसेसो ऊरूषु दोसुवि भगवतो उसभा ओपरामुहा तेण निव्वत्त बारसाहस्स नामं कतं उसभोत्ति...।[३१] इसी प्रकार अन्य तीर्थंकरों का स्वरूप भी बताया गया है।

तृतीय अध्ययन वन्दना का व्याख्यान करते हुए आचार्य ने अनेक दृष्टांत दिए हैं। वन्दनकर्म के साथ ही साथ चितिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म का भी सोदाहरण विवेचन किया है। वन्द्यावन्द्य का विचार करते हुए चूर्णिकार ने वन्द्य श्रमण का स्वरूप इस प्रकार बताया है---श्रमु तपसि खेदे च, श्राम्यतीति श्रमण: तंवंदेज्ज केरिसं? मेधावि मेरया धावतीति मेधावी, अहवा मेधावी- विज्ञानवान् तं; पाठान्तरं वा समणं वंदेज्जु मेधावी। तेण मेधाविणा मेधावी वंदित्तव्वो, चउभंगी, चउत्थे भंगे कितिकंमफलं भवतीति, सेसएसु भयणा। तथा संजतं संमं पावोवरतं, तहा सुसमाहितं सुट्ठु समाहितं सुसमाहितं णाणदंसणचरणेसु समुज्जतमिति यावत, को य सो एवंभूत:? पंचसमितो तिगुत्तो अट्ठहिं पवयणमाताहिं ठितो...।[३२] मेधावी, संयत और सुसमाहित श्रमण की वंदना करनी चाहिए। निम्नलिखित पाँच प्रकार के श्रमण अवन्द्य हैं--१. आजीवक, २. तापस, ३. परिव्राजक, ४. तच्चंणिय, ५. बोटिक। इसी प्रकार पार्श्वस्थ आदि भी अवंद्य हैं। चूर्णिकार स्वयं लिखते हैं -- किंच, इमेवि पंच ण वंदियव्वा समणसद्देवि सति, जहा आजीवगा तावसा परिव्वायगा, तच्चंणिया बोडिया समणा वा इमं सासणं पडिवन्ना, ण य ते अन्नतित्थे ण य सतित्थे जे वि सतित्थे न प्रतिज्ञामणुपालयन्ति ते वि पंच पासत्थादी ण वंदितव्वा।[३३] आगे आचार्य ने कुशीलसंसर्गत्याग, लिंग, ज्ञान-दर्शन-चारित्रवाद, आलंबनवाद, वंद्यवंदकसंबंध, वंद्यावंद्यकाल, वंदनसंख्या, वंदनदोष, वंदनफल आदि का दृष्टान्तपूर्वक विचार किया है।

प्रतिक्रमण नामक चतुर्थ अध्ययन का विवेचन करते हुए चूर्णिकार कहते हैं कि प्रतिक्रमण का शब्दार्थ है प्रतिनिवृत्ति। प्रमाद के वश अपने स्थान (प्रतिज्ञा) से हटकर अन्यत्र जाने के बाद पुनः अपने स्थान पर लौटने की जो क्रिया है, वही प्रतिक्रमण है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य ने दो श्लोक उद्धृत किए हैं-[३४]

स्वस्थानाद्यत्परं स्थानं, प्रमादस्य वशाद् गत:।
तत्रैव क्रमणं भूय:, प्रतिक्रमणमुच्यते।।1।।
क्षायोपशमिकाद्वापि, भावादौदयिकं गत:।
तत्रापि हि स एवार्थ:, प्रतिकूलगमात् स्मृत:।।2।।

इसी प्रकार चूर्णिकार ने प्रतिक्रमण का स्वरूप समझाते हुए एक प्राकृत गाथा भी उद्धृत की है, जिसमें बताया गया है कि शुभ योग में पुनः प्रवर्तन करना प्रतिक्रमण है। वह गाथा इस प्रकार है--[३५]

पति पति पवत्तणं वा सुभेसु जोगेसु मोक्खफलदेसु।
निस्सल्लस्स जतिस्सा जं तेणं तं पडिक्कमणं।।1।।

चूर्णिकार ने निर्युक्तिकार ही की भाँति प्रतिक्रमक, प्रतिक्रमण और प्रतिक्रांतव्य- इन तीनों दृष्टियों से प्रतिक्रमण का व्याख्यान किया है। इसी प्रकार प्रतिचरणा, परिहरणा, वारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा, शुद्धि और आलोचना का विवेचन करते हुए आचार्य ने तत्तद्विषयक कथानक भी दिए हैं। प्रतिक्रमण-संबंधी सूत्र के पदों का अर्थ करते हुए कायिक, वाचिक और मानसिक अतिचार, ईर्यापथिकी विराधना, प्रकामशय्या, भिक्षाचर्या, स्वाध्याय आदि में लगने वाले दोषों का स्वरूप समझाया गया है। इसी प्रसंग में चार प्रकार के कामगुण, पाँच प्रकार के महाव्रत, पाँच प्रकारकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समिति, परिष्ठापना, प्रतिलेखना आदि का अनेक आख्यानों एवं उद्धरणों के साथ प्रतिपादन किया गया है। एकादश उपासकप्रतिमाओं का स्वरूप समझाते हुए चूर्णिकार ने एत्थं कहवि अण्णोवि पाढो दीसति[३६] इन शब्दों के साथ पाठांतर भी दिया है। इसी प्रकार द्वादश भिक्षु-प्रतिमाओं का भी वर्णन किया गया है। तेरह क्रियास्थान, चौदह भूतग्राम एवं गुणस्थान, पंद्रह परमाधार्मिक, सोलह अध्ययन (सूत्रकृत के प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययन), सत्रह प्रकार का असंयम, अठारह प्रकार का अब्रह्म, उत्क्षिप्तना आदि उन्नीस अध्ययन, बीस असमाधिस्थान इक्कीस सबल (अविशुद्ध चरित्र), बाईस परीषह,तेईस सूत्रकृत के अध्ययन (पुंडरीक आदि), चौबीस देव, पच्चीस भावनाएँ, छब्बीस उद्देश (दशाश्रुतस्कन्ध के दस, कल्प-बृहत्कल्प के छह और व्यवहार के दस),[३६] सत्ताईस अनगार गुण, अट्ठाईस प्रकार का आचराकल्प, उनतीस पापश्रुत, तीस मोहनीय स्थान, इकतीस सिद्धादिगुण, बत्तीस प्रकार का योगसंग्रह आदि विषयों का प्रतिपादन करने के बाद आचार्य ने ग्रहण-शिक्षा और आसेवनशिक्षा--इन दो प्रकार की शिक्षाओं का उल्लेख किया है और बताया है कि आसेवनशिक्षा का वर्णन उसी प्रकार करना चाहिए जैसा कि ओघसामाचारी और पदविभागसामाचारी में किया गया है-- आसेवणसिक्खा जथा ओहसामायारीए पयविभागसामाचारीए य वण्णितं।[३८] शिक्षा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए अभयकुमार का विस्तृत वृत्त भी दिया गया है। इसी प्रसंग पर चूर्णिकार ने श्रेणिक, चेल्लणा, सुलसा, कोणिक, चेटक, उदायी, महापद्मनंद, शकटाल, वररुचि, स्थूलभद्र आदि से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक आख्यानों का संग्रह किया है। अज्ञातोपधानता, अलोभता, तितिक्षा, आर्जव, शुचि, सम्यग्दर्शनविशुद्धि, समाधान, आचारोपगत्व, विनयोपगत्व, धृतमति, संवेग, प्रणिधि, सुविधि, संवर, आत्मदोषोपसंहार, प्रत्याख्यान, व्युत्सर्ग, अप्रमाद, ध्यान, वेदना, संग, प्रायश्चित, आराधना, आशातना, अस्वाध्यायिक, प्रत्युपेक्षणा आदि प्रतिक्रमणसंबंधी अन्य आवश्यक विषयों का दृष्टांतपूर्वक प्रतिपादन करते हुए प्रतिक्रमण नामक चतुर्थ अध्ययन का व्याख्यान समाप्त किया है। आत्मदोषोपसंहार का वर्णन करते हुए व्रत की महत्ता बताने के लिए आचार्य ने एक सुंदर श्लोक उद्धृत किया है जिसे यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा। वह श्लोक इस प्रकार है-[३९]

वरं प्रविष्टं ज्वलितं हुताशनं, न चापि भग्नं चिरसंचितं व्रतम्।
वरं हि मृत्युः परिशुद्धकर्मणो, न शीलवृत्तस्खलितस्य जीवतम्॥1॥

अर्थात् जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर लेना अच्छा है किन्तु चिरसंचित व्रत को भंग करना ठीक नहीं। विशुद्धकर्मशील होकर मर जाना अच्छा है,किन्तु शील से स्खलित होकर जीना ठीक नहीं।

पंचम अध्ययन कायोत्सर्ग की व्याख्या के प्रारंभ में व्रणचिकित्सा (वणतिगिच्छा) का प्रतिपादन किया गया है और कहा गया है कि व्रण दो प्रकार का होता है- द्रव्यव्रण और भावव्रण। द्रव्यव्रण की औषधादि से चिकित्सा होती है। भावव्रण अतिचाररूप है जिसकी चिकित्सा प्रायश्चित्त से होती है। वह प्रायश्चित्त दस प्रकार है--आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, अनवस्थाप्य और पारांचिक। चूर्णि का मूल पाठ इस प्रकार है--सो य वणो दुविधो-दव्वे भावे य, दव्ववणो ओसहादीहिं तिगिच्छिज्जति, भाववणो संजमातियारो तस्स पायच्छित्तेण तिगिच्छणा, एतेणावसरेण पायच्छित्तं परूविज्जति। वणतिगिच्छा अणुगमो य, तं पायच्छित्तं दसविहं....।[४०] दस प्रकार के प्रायश्चित्तों का विशद वर्णन जीतकल्प सूत्र में देखना चाहिए। कायोत्सर्ग में काय और उत्सर्ग दो पद हैं। काय का निक्षेप नाम आदि बारह प्रकार का है। उत्सर्ग का निक्षेप नाम आदि छह प्रकार का है। कायोत्सर्ग के दो भेद हैं- चेष्टाकायोत्सर्ग और अभिभवकायोत्सर्ग। अभिभवकायोत्सर्ग हार कर अथवा हराकर किया जाता है। हूणादि से पराजित होकर कायोत्सर्ग करना अभिभवकायोत्सर्ग है। गमनागमनादि के कारण जो कायोत्सर्ग किया जाताहै वह चेष्टाकायोत्सर्ग है--सो पुण काउसग्गो दुविधो चेट्ठाकाउस्सग्गो य अभिभवकाउस्सग्गो य, अभिभवो नाम अभिभूतो वा परेण परं वा अभिभूय कुणति, परेणाभिभूतो तथा हूणादीहिं अभिभूतो सव्वं सरीरादि वोसिरामिति काउस्सग्गं करेति, परं वा अभिभूय काउस्सग्गं करेति, जथा तित्थगरो देवमणुयादिणो अणुलोमपडिलोमकारिणो भयादी पंच अभिभूय काउस्सग्गं कातुं प्रतिज्ञां पूरेति, चेट्ठाकाउस्सग्गो चेट्ठातो निप्फण्णो जथा गमणागमणादिसु काउस्सग्गो कीरति...।[४१] कायोत्सर्ग के प्रशस्त और अप्रशस्त ये दो अथवा उच्छ्रित आदि नौ भेद भी होते हैं।[४२] इन भेदों का वर्णन करने के बाद श्रुत, सिद्ध आदि की स्तुति का विवेचन किया गया है तथा क्षामणा की विधि पर प्रकाश डाला गया है। कायोत्सर्ग के दोष, फल आदि का वर्णन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए पंचम अध्ययन का व्याख्यान समाप्त किया गया है।

षष्ठ अध्ययन, प्रत्याख्यान की चूर्णि में प्रत्याख्यान के भेद, श्रावक के भेद, सम्यक्त्व के अतिचार, स्थूलप्राणातिपातविरमण और उसके अतिचार, स्थूलमृषावादविरमण और उसके अतिचार, स्थूलअदत्तादानविरमण और उसके अतिचार, स्वदारसंतोष और परदारप्रत्याख्यान एवं तत्संबंधी अतिचार, परिग्रहपरिमाण एवं तद्विषयक अतिचार, तीन गुणव्रत और उनके अतिचार, चार शिक्षाव्रत और उनके अतिचार, दस प्रकार के प्रत्याख्यान, छह प्रकार की विशुद्धि, प्रत्याख्यान के गुण और आगार आदि का विविध उदाहरणों के साथ व्याख्यान किया गया है। बीच-बीच में यत्र-तत्र अनेक गाथाएँ एवं श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं। अंत में प्रस्तुत संस्करण की प्रति के विषय में लिखा गया है कि सं. १७७४ में पं. दीपविजयगणि ने पं. न्यायसागरगणि को आवश्यकचूर्णि प्रदान की--सं. १७७४ वर्षे पं. दीपविजयगणिना आवश्यकचूर्णिः पं. श्रीन्यायसागरगणिभ्यः प्रदत्ता।[४३]

आवश्यकचूर्णि के इस परिचय से स्पष्ट है कि चूर्णिकार जिनदासगणि महत्तर ने अपनी प्रस्तुति कृति में आवश्यकनिर्युक्ति में निर्दिष्ट सभी विषयों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है तथा विवेचन की सरलता, सरसता एवं स्पष्टता की दृष्टि से अनेक प्राचीन ऐतिहासिक एवं पौराणिक आख्यान उद्धृत किए हैं। इसी प्रकार विवेचन में यत्र-तत्र अनेक गाथाओं एवं श्लोकों का समावेश भी किया है। यह सामग्री भारतीय इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

दशवैकालिकचूर्णि (जिनदासगणिकृत)

यह चूर्णि[४४] भी निर्युक्ति का अनुसरण करते हुए लिखी गई है तथा द्रुमपुष्पिका आदि दस अध्ययन एवं दो चूलिकाएँ-इस प्रकार बारह अध्ययनों में विभक्त है। इसकी भाषा मुख्यतया प्राकृत है। प्रथम अध्ययन में एकक, काल, द्रुम, धर्म आदि पदों का निक्षेप - पद्धति से विचार किया गया है तथा शय्यंभववृत्त, दस प्रकार के श्रमणधर्म, अनुमान के विविध अवयव आदि का प्रतिपादन किया गया है। संक्षेप में प्रथम अध्ययन में धर्म की प्रशंसा का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्ययन का मुख्य विषय धर्म में स्थित व्यक्ति को धृति कराना है। चूर्णिकार इस अध्ययन की व्याख्या के प्रारंभ में ही कहते हैं कि अध्ययन के चार अनुयोग द्वारों का व्याख्यान उसी प्रकार समझ लेना चाहिए जिस प्रकार आवश्यकचूर्णि में किया गया है।[४५] इसके बाद श्रमण के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए पूर्व काम, पद, शीलांगसहस्र आदि पदों का सोदाहरण विवेचन किया गया है। तृतीय अध्ययन में दृढधृतिक के आचार का प्रतिपादन किया गया है। इसके लिए महत्, क्षुल्लक, आचार, दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा, मिश्रकथा, अनाचीर्ण, संयतस्वरूप आदि का विचार किया गया है। चतुर्थ अध्ययन की चूर्णि में जीव, अजीव, चारित्रधर्म, यतना, उपदेश, धर्मफल आदि के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। पंचम अध्ययन की चूर्णि में साधु के उत्तरगुणों का विचार किया गया है जिसमें पिण्डस्वरूप, भक्तपानैषणा, गमनविधि, गोचरविधि, पानकविधि, परिष्ठापनविधि, भोजनविधि, आलोचनविधि आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। बीच-बीच में कहीं-कहीं पर मांसाहार, मद्यपान आदि की चर्चा भी की गई है।[४६] षष्ठ अध्ययन में धर्म, अर्थ, काम, व्रतषट्क, कायषट्क आदि का प्रतिपादन किया गया है। इस अध्ययन की चूर्णि में आचार्य ने अपने संस्कृत-व्याकरण के पाण्डित्य का भी अच्छा परिचय दिया है। सप्तम अध्ययन की चूर्णि में भाषासंबंधी विवेचन है। इसमें भाषा की शुद्धि, अशुद्धि, सत्य, मृषा सत्यमृषा, असत्यमृषा आदि का विचार किया गया है। अष्टम अध्ययन की चूर्णि में इंद्रियादि प्राणियों का विवेचन किया गया है। नवम अध्ययन की चूर्णि में लोकोपचारविनय, अर्थविनय, कामविनय, भवविनय, मोक्षविनय आदि की व्याख्या की गई है। दशम अध्ययन में भिक्षुसंबंधी गुणों पर प्रकाश डाला गया है। चूलिकाओं की चूर्णि में रति, अरति, विहारविधि, गृहिवैयावृत्यनिषेध, अनिकेतवास आदि विषयों से संबंधित विवेचन है। चूर्णिकार ने स्थान-स्थान पर अनेक ग्रंथों के नामों का निर्देश भी किया है।[४७]

उत्तराध्ययनचूर्णि

यह चूर्णि[४८] भी निर्युक्त्यनुसारी है तथा संस्कृतिमिश्रित प्राकृत में लिखी गई है। इसमें संयोग, पुद्गलबन्ध, संस्थान, विनय, क्रोधवारण, अनुशासन, परीषह, धर्मविघ्न, मरण, निर्ग्रन्थपंचक, भयसप्तक ज्ञानक्रियैकान्त आदि विषयों पर सोदाहरण प्रकाश डाला गया है। स्त्रीपरीषह का विवेचन करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए आचार्य ने नारी-स्वभाव की कड़ी आलोचना की है और इस प्रसंग पर निम्नलिखित दो श्लोक भी उद्धृत किए हैं--

एषा हसंति रुदंति च अर्थहेतोर्विश्वासयंति च परं न च विश्वसंति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः॥१॥
समुद्रवीचीचपलस्वभावाः संध्याभ्ररेखेव मुहूर्तरागाः।
स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, नीपीडितालक्त(क)वत् त्यजंति॥२॥

-- उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ. ६५.

हरिकेशीय अध्ययन की चूर्णि में आचार्य ने अब्राह्मण के लिए निषिद्ध बातों की ओर निर्देश करते हुए शूद्र के लिए निम्न श्लोक उद्धृत किया है--

न शूद्राय बलिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविः कृतम्।
न चास्योपदिशेद्धर्मं, न चास्य व्रतमादिशेत्॥

--वही, पृ. २०५.

चूर्णिकार ने चूर्णि के अंत में अपना परिचय देते हुए स्वयं को वाणिज्यकुलीन, कोटिकगणीय, वज्रशाखी, गोपालगणिम्रहत्तर का शिष्य बताया है। वे गाथाएँ इस प्रकार हैं--

वाणिजकुलसंभूओ कोडियगणिओ उवयरसाहीतो।
गोवालियमहत्तरओ, विक्खाओ आसि लोगंमि॥1॥
ससमयपरसमयविऊ, ओयस्सी दित्तिमं सुगंभीरो।
सीसगणसंपरिवुडो, वक्खाणरतिप्पिओ आसी॥2॥
तेसिं सीसेण इमं, उत्तरज्झयणाण चुण्णिखंडं तु।
रइयं अणुग्गहत्थं, सीसाणं मंदबुद्धीणं॥3॥
जं एत्थं वस्सुत्तं, अयाणमाणेण विरतितं हाज्जा।
तं अणुओगधरां मे, अणुचिंतेउं समारेंतु॥4॥

वही, पृ. २८३.

दशवैकालिकचूर्णि भी निःसंदेह उन्हीं आचार्य की कृति है जिनकी उत्तराध्यनचूर्णि है। इतना ही नहीं, दशवैकालिकचूर्णि उत्तराध्यनचूर्णि से पहले लिखी गई है। इसका प्रमाण उत्तराध्ययनचूर्णि में मिलता है जो इस प्रकार है-षष्ठोपि चित्तो नानाप्रकारो प्रकीर्णतपोभिधीयते, तदन्यत्राभिहितं, शेषं दशवैकालिकचूर्णौ अभिहितं...।[४९] यहाँ आचार्य ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि प्रकीर्णतप के विषय में अन्यत्र कह दिया गया है और शेष दशवैकालिकचूर्णि में कह दिया गया है। जिस स्वर में आचार्य ने यह लिखा है कि इसके विषय में अन्यत्र कह दिया गया है उसी स्वर में उन्होंने यह भी लिखा है कि शेष दशवैकालिकचूर्णि में कह दिया गया है। इस स्वरसाम्य को देखते हुए यह कथन अनुपयुक्त नहीं कि उत्तराध्ययन और दशवैकालिक की चूर्णियाँ एक ही आचार्य की कृतियाँ हैं तथा दशवैकालिकचूर्णि की रचना उत्तराध्ययनचूर्णि से पूर्व की है।

आचारांगचूर्णि

इस चूर्णि[५०] में प्रायः उन्हीं विषयों का विवेचन है जो आचारांग निर्युक्ति में है। निर्युक्ति की गाथाओं के आधार पर ही यह चूर्णि लिखी गई है अतः ऐसा होना स्वाभाविक है। इसमें वर्णित विषयों में से कुछ के नामों का निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा। प्रथम श्रुतस्कन्ध की चूर्णि में मुख्य रूप से निम्न विषयों का व्याख्यान किया गया है-अनुप्रयोग, अंग, आचार, ब्रह्म, वर्ण, आचरण, शस्त्र, परिज्ञा, संज्ञा, दिक्, सम्यक्त्व, योनि, कर्म, पृथ्वी आदि काय, लोक, विजय, गुणस्थान, परिताप, विहार, रति, अरति, लोभ, जुगुप्सा, गोत्र, ज्ञाति, जातिमरण, एषणा, बंध-मोक्ष, शीतोष्णादि परीषह, तत्त्वार्थश्रद्धा, जीवरक्षा, अचेलत्व, मरण, संलेखना, समनोज्ञत्व, यामत्रय, त्रिवस्त्रता, वीरदीक्षा, देवदृत, सवस्त्रता। चूर्णिकार ने भी निक्षेपपद्धति का ही आधार लिया है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने मुख्य रूप से निम्न विषयों का विवेचन किया है--अग्र, प्राणसंसक्त, पिण्डैषणा, शय्या, ईर्या, भाषा, वस्त्र, पात्र, अवग्रहसप्तक, सप्तसप्तक, भावना, विमुक्ति। चूँकि आचारांग सूत्र का मूल प्रयोजन श्रमणों के आचार-विचार की प्रतिष्ठा करना है, अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन इसी प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए किया गया है।

प्राकृतप्रधान प्रस्तुत चूर्णि में यत्र-तत्र संस्कृत के श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं। इनके मूल स्थल की खोज न करते हुए उदाहरण के रूप में भी कुछ श्लोक यहाँ उद्धृत किए जाते हैं। आगम के प्रामाण्य की पुष्टि के लिए निम्न श्लोक उद्धृत किया गया है-

जिनेन्द्रवचनं सूक्ष्महेतुभिर्यदि गृह्यते।
आज्ञया तद्ग्रहीतव्यं, नान्यथावादिनो जिनाः॥

आचारांगचूर्णि, पृ. २०

स्वजन से भी धन अधिक प्यारा होता है, इसका समर्थन करते हुए कहा गया है--

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणैः प्रियतराः पुत्राः पुत्रैः प्रियतरं धनम्।
स तस्य हरते प्राणान् यो यस्य हरते धनम्॥

वही, पृ. ५५

अपरिग्रह की प्रशंसा करते हुए कहा गया है-

तस्मै धर्मभृते देयं, यस्य नास्ति परिग्रहः।
परिग्रहे तु ये सक्ता, न ते तारयितुं क्षमाः॥

वही, पृ. ५९.

कामभोग से व्यक्ति कभी तृप्त नहीं होता, इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा गया है--

नाग्निस्तुष्यति काष्ठानां, नापगानां महोदधिः।
नान्तकृत्सर्वभूतानां, न पुंसां वामलोचना॥

वही. पृ. ७५.

साधु को किसी वस्तु का लाभ-होने पर मद नहीं करना चाहिए तथा अलाभ होने पर खेद नहीं करना चाहिए। जैसा कि कहा गया है--

लभ्यते लभ्यते साधु, साधु एव न लभ्यते।
अलब्धे तपसो वृद्धिर्लब्धे देहस्य धारणा।

-वही, पृ. ८१.

इसी प्रकार स्थान-स्थान पर प्राकृत गाथाएँ भी उद्धृत की गई हैं। इन उद्धरणों से विषय विशेष रूप से स्पष्ट होता है एवं पाठक तथा श्रोता की रुचि में वृद्धि होती है।

सूत्रकृतांगचूर्णि

इस चूर्णि[११] की शैली भी वही है जो आचारांगचूर्णि की है। इसमें निम्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है-मंगलचर्चा, तीर्थसिद्धि, संघात, विस्रसाकरण, बन्धनादिपरिणाम, भेदादिपरिणाम, क्षेत्रादिकरण, आलोचना, परिग्रह, ममता, पंचमहाभूतिक, एकात्मकवाद, तज्जीवतच्छरीरवाद, अकारकात्मवाद, स्कन्धवाद, नियतिवाद, अज्ञानवाद, कर्तृवाद, त्रिराशिवाद, लोकविचार, प्रतिजुगुप्सा (गोमांस, मद्य, लसुन, पलांडु आदि के प्रति अरुचि), वस्त्रादिप्रलोभन, शूरविचार, महावीरगुण, महावीरगुणस्तुति, कुशीलता, सुशीलता, वीर्यनिरूपण, समाधि, दानविचार, समवसरणविचार, वैनयिकवाद, नास्तिकमतचर्चा, सांख्यमतचर्चा, ईश्वरकर्तृत्वचर्चा, नियतिवादचर्चा, भिक्षुवर्णन, आहारचर्चा, वनस्पतिभेद, पृथ्वीकायादिभेद, स्याद्वाद, आजीविकमतनिरास, गोशालकमतनिरास, बौद्धमतनिरास, जातिवादनिरास इत्यादि।

प्रस्तुत चूर्णि संस्कृतमिश्रित प्राकृत में लिखी गई है। इतना ही नहीं, चूर्णि को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें प्राकृत से भी संस्कृत का प्रयोग अधिक मात्रा में है। नीचे कुछ उद्धरण दिए जाते हैं जिन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि इसमें प्राकृत का कितना अंश है व संस्कृत का कितना।

'एतदिति' यदुक्तमुच्यते वा सारं विद्धीति वाक्यशेषः, यत्किं? उच्यते, जे ण हिंसति किंचणं, किंचिदिति त्रसं स्थावरं वा, अहिंसा हि ज्ञानगतस्य फलं तथा चाह योऽधीत्य शास्त्रमखिलं ... एवं खु णाणिणं सारं.....।

--सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. ६२

विउट्ठितो णाम विच्युतो, यथा व्युत्थितोऽस्य विभवः संपत्व्युत्थिताः संयमप्रतिपन्न इत्यर्थः, पार्श्वस्थादीनामन्यतमेन वा क्वचिन्प्रमादाच्च कार्येण वा त्वरितं गच्छन् जहा तुज्झं ण...?

--वही, पृ. २८८.

लोगेवि भणणइ- छिण्णसोता न दिंति, सुट्ठु संजुत्ते सुसंजुत्ते, सुट्ठु समिए सुसमिए, समभावः सामायिकं सो भणई-सुट्ठु सामाइए सुसामाइए, आतरापत्ते विऊत्ति अप्पणो वादो अत्तए वादो २ यथा अस्त्यात्मा नित्यः अमूर्त्तः कर्त्ता भोक्ता उपयोगलक्षणो य एवमादि आतप्पवादो...।'

-वही, पृ. ३०७

अहावरे चउत्थे (सू.५) णितिया जाव जहा जहा मे एस धम्मे सुअक्खाए, कयरे ते धम्मे? णितियावादे, इह खलु दुवे पुरिसजाता एमे पुरिसे किरियामक्खंति, किरिया कर्म परिस्पन्द इत्यर्थः कस्यासौ किरिया? पुरुषस्य, पुरुष एव गमनादिषु क्रियासु स्वतो अनुसन्धाय प्रवर्त्तते, एव भणित्तापि ते दोवि पुरिसा तुल्ला णियतिवसेण, तत्र नियतिवादी आत्मीय दर्शनं समर्थयन्निदमाह- यः खलु मन्यते 'अहं करोमि इति' असावपि नियत्या एव कार्यते अहं करोमीति...? **वही, पृ. ३२२-३**

जीतकल्प-बृहच्चूर्णि

प्रस्तुत चूर्णि[१२] सिद्धसेनसूरि की कृति है। इस चूर्णि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिरिक्त जीतकल्प सूत्र पर एक और चूर्णि लिखी गई है ऐसा प्रस्तुत चूर्णि के अध्ययन से ज्ञात होता है।[53] यह चूर्णि अथ से इति तक प्राकृत में है। इसमें एक भी वाक्य ऐसा नहीं है जिसमें संस्कृत-शब्द का प्रयोग हुआ हो। प्रारंभ में आचार्य ने ग्यारह गाथाओं द्वारा भगवान महावीर, एकादश गणधर, अन्य विशिष्ट ज्ञानी तथा सूत्रकार जिनभद्र क्षमाश्रमण इन सबको नमस्कार किया है। ग्रंथ में यत्र-तत्र अनेक गाथाएँ उद्धृत की गई हैं। इन गाथाओं को उद्धृत करते समय आचार्य ने किसी ग्रंथ आदि का निर्देश न करके 'तं जहा भणियं च', 'सो...इमो' इत्यादि वाक्यों का प्रयोग किया है।[54] इसी प्रकार अनेक गद्यांश भी उद्धृत किए गए हैं।

जीतकल्पचूर्णि में भी उन्हीं विषयों का संक्षिप्त गद्यात्मक व्याख्यान है, जिनका जीतकल्पभाष्य में विस्तार से विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीतव्यवहार का स्वरूप समझाया गया है। जीत का अर्थ इस प्रकार किया गया है-- जीयं ति वा करणिज्जं ति वा आयरणिज्जं ति वा एयट्ठं। जीवेइ वा तिविहे वि काले तेण जीयं।[55] इसी प्रकार चूर्णिकार ने दस प्रकार के प्रायश्चित, नौ प्रकार के व्यवहार, मूलगुण, उत्तरगुण आदि का विवेचन किया है। अंत में पुनः सूत्रकार जिनभद्र को नमस्कार करते हुए निम्न गाथाओं के साथ चूर्णि समाप्त की है।[56]

इति जेण जीयदाणं साहूणऽइयारपंकपरिसुद्धिकरं।
गाहाहिं फुडं रइयं महुरपयत्थाहिं पावणं परमहियं।।
जिणभद्दखमासमणं निच्छियसुत्तत्थदायगामलचरणं।
तमहं वंदे पयओ परमं परमोवगारकारिणमहग्घं।।

दशवैकालिकचूर्णि (अगस्त्यसिंहकृत)

यह चूर्णि[57] जिनदासगणि की कही जाने वाली दशवैकालिकचूर्णि से भिन्न है। इसके लेखक हैं वज्रस्वामी की शाखा-परंपरा के एक स्थविर श्री अगस्त्य सिंह। यह प्राकृत में है। भाषा सरल एवं शैली सुगम है। इसकी व्याख्यानशैली के कुछ नमूने यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा। आदि, मध्य और अन्त्य मंगल की उपयोगिता बताते हुए चूर्णिकार कहते हैं-

आदिमंगलेण आरम्भप्पभितिं णिव्विसाया सत्थं पडिवज्जंति, मज्झमंगलेण अव्वासंगेण पारं गच्छंति, अवसाणमंगलेण सिस्स पसिस्ससंताणे पडिवाएंति। इमं पुण सत्थं संसारविच्छेयकरं ति सव्वमेव मंगलं तहावि विसेसो दरिसिज्जति आदि मंगलमिह धम्मो मंगलमुक्कट्ठं (अध्य. १, गा. १) धारेति संसारे पडमाणमिति धम्मो, एतं च परमं समस्सासकारणं ति मंगलं। मज्झे धम्मत्थकामपढमसुत्तं णाणदंसणसंपण्णं संजमे य तवे रयं (अध्य. ६, गा. १) एवं सो चेव धम्मो विसेसिज्जति, यथा-- सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (तत्त्वा. अ. १-१) इति। अवसाणे आदिमज्झदिट्ठविसेसियस्स फलं दरिसिज्जति छिंदित्तु जातीमरणस्स बंधणं उवेति भिक्खू अपुणागमं गतिं (अध्य. १०, गा. २१) एवं सफलं सकलं सत्थं ति।...[58]

दशकालिक, दशवैकालिक अथवा दशवैतालिक की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा गया है--

दशकं अज्झयणाणं कालियं निरूत्तेण विहिणा ककारलोपे कृते दसकालियं। अहवा वेकालियं, मंगलत्थं पुव्वण्हे सत्थारंभो भवति, भगवया पुण अज्जसेज्जंवेणं कहमवि अवरण्हकाले उवयोगा कतो, कालातिवायविग्घपरिहारिणा य निज्जूढमेव, अतो विगते काले विकाले दसकमज्झयणाण कतमिति दसवेकालियं। चउपोरिसितो सज्झायकाले तम्मि विगते वि पढिज्जतीति विगयकालियं दसवेकालियं। दसमं वा वेतालियो पजाति वृत्तेहिं णियमितमज्झयणमिति दसवेतालियं।[59]

षड्जीवनिका नामक चतुर्थ अध्ययन के अर्थाधिकार का विचार करते हुए चूर्णिकार कहते हैं--

जीवाजीवाहिगमो गाहा[60]। पढमो जीवाहिगमो, अहियो-परिण्णाणं १ ततो अजीवाधिगमो २ चरित्तधम्मो ३ जयणा ४ उवएसो ५ धम्मफलं। तस्स चत्तारि अणओगद्दारा जहा आवस्सए। नामनिप्फण्णो भण्णति..[61]

दशवैकालिक के अंत की दो चूलाओं-रतिवाक्यचूला और विविक्तचर्याचूला की रचना का प्रयोजन बताते हुए आचार्य कहते हैं--

धम्मे धितिमतो खुड्डियायारोवत्थितस्स विदित्तछक्कायवित्थरस्स एसणीयादिधारितसरीरस्स समत्तायारावत्थितस्स वयणविभागकुसलस्स सुप्पणिहितजोगजुत्तस्स विणीयस्स दसमज्झयणोपवण्णितगुणस्स समत्तसकलभिक्खुभावस्स विसेसेण थिरीकरणत्थं विवित्तचरियोवदेसत्थं च उत्तरतं तमुपदिट्ठं चूलितादुतं रतिवक्कं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवित्तचरिया चूलिता य। तत्थ धम्मे थिरीकरणत्था रतिवक्कणामधेया पढमलूचा भाणिता। इदाणिं विवित्तचरियोवदेसत्था बितिया चूला भाणितत्वा।[६२]

अन्त में चूर्णिकार ने अपनी शाखा का नाम, अपने गुरु का नाम तथा अपना खुद का नाम बताते हुए निम्न गाथाएँ लिखकर चूर्णि की पूर्णाहुति की है--

वीरवरस्स भगवतो तित्थे कोडीगणे सुविपुलम्मि।
गुणगणवइराभस्सा वेरसामिस्स साहाए।।1।।

महरिसिसरिससभावा भावाऽभावाण मुणितपरमत्था
रिसिगुत्तखमासमणो खमासमाणं निधी आसि।।2।।

तेसिं सीसेण इमा कलसभवमइंदणामधेज्जेणं।
दसकालियस्स चुण्णी पयाणरयणातो उवण्णत्था।।3।

रुयिरपदसंधिणियता छड्डियपुणरुत्तवित्थरपसंगा।
बक्खाणमंतरेणावि सिस्संमतिबोधणसमत्था।।4।।

ससमयपरसमयणयाण जं च ण समाधितं पमादेणं।
तं खमह पसाहेह य इय विण्णत्ती पवयणीणं।।5।।

चूर्णिकार का नाम कलशभवमृगेन्द्र अर्थात् अगस्त्यसिंह है। कलश का अर्थ है कुंभ, भव का अर्थ है उत्पन्न और मृगेंद्र का अर्थ है सिंह। कलशभव का अर्थ हुआ कुंभ से उत्पन्न होने वाला अगस्त्य। अगस्त्य के साथ सिंह जोड़ देने से अगस्त्यसिंह बन जाता है। अगस्त्यसिंह के गुरु का नाम ऋषिगुप्त है। ये कोटिगणीय वज्रस्वामी की शाखा के हैं।

प्रस्तुत प्रति के अंत में कुछ संस्कृत श्लोक हैं जिनमें मूल प्रति का लेखन कार्य सम्पन्न कराने वाली के रूप में शांतिमति के नाम का उल्लेख है--

सम्यक् शांतिमतिर्व्यलेखयदिदं मोक्षाय सत्पुस्तकम्।

प्रस्तुत चूर्णि के मूल सूत्रपाठ, जिनदासगणिकृत चूर्णि के मूल सूत्रपाठ तथा हरिभद्रकृत टीका के मूल सूत्रपाठ इन तीनों में कहीं-कहीं थोड़ा-सा अंतर है। नीचे इनके कुछ नमूने दिए जाते हैं जिनसे यह अंतर समझ में आ सकेगा। यही बात अन्य सूत्रों के व्याख्याग्रंथों के विषय में भी कही जा सकती है। दशवैकालिक सूत्र की गाथाओं[६३] के अंतर के कुछ नमूने इस प्रकार हैं--

अध्ययन	गाथा	अगस्त्यसिंहकृत चूर्णि	जिनदासकृत चूर्णि	हरिभद्रकृत चूर्णि
1	3	मुक्का	मुत्ता	मुत्ता
1	3	साहबो	साहुणो	साहुणो
1	4	अहागडेहिं...	अहाकडेसु....	अहागहेसु....
		पुप्फेहिं	पुप्फेहिं	पुप्फेसु
2	1	कहं णु कुज्जा	कतिहं कुज्जा	कहं णु कुज्जा
		कतिहं कुज्जा (पाठान्तर)	कयाहं कुज्जा (पाठा.)	कतिहं कुज्जा (पा.)
		कयाहं कुज्जा (")	कहं णु कुज्जा (")	कयाहं कुज्जा (")
		कहं सकुज्जा (")		कथमहं (कहहं)
2	5	छिंदाहि रागं	छिंदाहि दोसं	छिंदाहि दोसं
2	5	विणए हि दोसं	विणएज्ज रागं	विणएज्ज रागं
3	3	संपुच्छणं संपुच्छगो (पाठा.)	संपुच्छणा	संपुच्छण
3	15	खवेत्तु	खवेत्ता	खवेत्ता
4	4	चित्तमंतमक्खा. (पाठा.)	चित्तमत्ता अक्खा (पाठा.)	चित्तमंत्तमक्खा (पाठा.)
4	10	इच्छेतेहिं छहिं जीवनिकायेहि	इच्चेतेहिं छहिं जीवनिकायेहि	इच्चेसि छण्हं जीवनिकायाणं
5 (प्र.उ.)	5	पाण-भूते य	पाण-भूते य	पाणि-भूयाइं
5 (')	13	अणातिले	अणाउले	अणाउले
5 (")	13	जहाभागं	जहाभावं	जहाभागं
5 (")	15	पाणियकम्मतं	दगभवणाणि य	दगभवणाणि य
5 (")	27	इच्छेज्जा	इच्छेज्जा	गेण्हेज्जा
5 (द्वि.उ.)	24	धारए	धारए	घावए
7	12	आयारभावदोसेण	गाथा नहीं	आयारभावदोसन्नू
7	22	गाथा नहीं	गाथा है	गाथा नहीं
7	23	गाथा नहीं	गाथा है	गाथा नहीं
8	3	भवियव्वं	होयव्वयं	?
9 (प्र.उ.)	1	चिट्ठे	चिट्ठे	सिक्खे चिट्ठे (पाठा.)
9 (द्वि.अ.)	1	साला	साला	साहा.
9 (तृ.उ.)	15	घुणिय	घुणिय	विहुय
9 (च.उ.)	11	आरुहंतिएहिं	आरहंतेहिं	आरहंतेहिं
10	4	दग	दग	तण
10	19	विवज्जयित्ता	विविंच धीर!	विवज्जयित्ता
1 चूलिका	14	कुसीलं	सकुसीलं	कुसिला
1 "	19	ण प्पचलेंति	णो पयलेंति	न प्पचलेंति
2 "	3	निप्फेडो	निग्घाडो	उत्तारो
2 "	4	एवं	एवं	तम्हा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्युक्तिगाथाओं की तो और भी विचित्र स्थिति है। निर्युक्ति की ऐसी अनेक गाथाएँ हैं जो हरिभद्र की टीका में तो हैं किन्तु चूर्णियों में नहीं मिलतीं। हाँ, इनमें कुछ गाथाएँ ऐसी अवश्य हैं जिनका चूर्णियों में अर्थ अथवा आशय दे दिया गया है किन्तु जिन्हें गाथाओं के रूप में उद्धृत नहीं किया गया है। दूसरी बात यह है कि चूर्णियों में अधिकांश गाथाएँ पूरी की पूरी नहीं दी जाती हैं, अपितु प्रारंभ में कुछ शब्द उद्धृत कर केवल उनका निर्देश दिया जाता है। कुछ ही गाथाएँ ऐसी होती हैं जो पूरी उद्धृत की जाती हैं। हम यहाँ हरिभद्र की टीका में उपलब्ध कुछ निर्युक्ति गाथाएँ[६४] उद्धृत कर यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि उमें से कौन सी दोनों चूर्णियों में पूरी की पूरी हैं, कौन सी अपूर्ण अर्थात् संक्षिप्तरूप में है, किनका अर्थ रूप से निर्देश किया गया है और किनका बिल्कुल उल्लेख नहीं हैं।

सिद्धिगइमुवगयाणं कम्मविसुद्धाण सव्वसिद्धाणं।
नमिऊणं दसकालियणिज्जुत्तिं कित्तइस्सामि॥1॥

यह गाथा न तो जिनदासगणि की चूर्णि में है, न अगस्त्यसिंहकृत चूर्णि में। इनमें इसका अर्थ अथवा संक्षिप्त उल्लेख भी नहीं है।

अपुहुत्तपुहुत्ताइं निद्दसिउं एत्थ होइ अहिगारो।
चरणकरणाणुजोगेण तस्स दारा इमे होंति॥4॥

इस गाथा का अर्थ तो दोनों चूर्णियों में है किन्तु पूरी अथवा अपूर्ण गाथा एक भी नहीं है।

णामं ठवणा दविए माउयपयसंगहेक्कए चेव।
पज्जव भावे य तहा सत्तेए एक्कगा होंति॥8॥

यह गाथा दोनों चूर्णियों में पूरी की पूरी उद्धृत की गई है। यह इन चूर्णियों की प्रथम निर्युक्ति गाथा है जो हारिभद्रीय टीका की आठवीं निर्युक्ति गाथा है-

दव्वे अद्ध अहाउअ उवक्कमे देसकालकाले य
तह य पमाणे वण्णे भावे पगयं तु भावेणं॥11॥

यह गाथा भी दोनों चूर्णियों में इसी प्रकार उपलब्ध है--
आयप्पवायपुव्वा निज्जूढा होइ धम्मपन्नत्ती।
कम्मप्पवायपुव्वा पिंडस्स उ एसणा तिविहा॥16॥

यह गाथा दोनों चूर्णियों में संक्षिप्त रूप से निर्दिष्ट है, पूर्ण रूप में उद्धृत नहीं।

दुविहो लोगुत्तरिओ सुअधम्मो खलु चरित्तधम्मो अ।
सुअधम्मो सज्झाओ चरित्तधम्मो समणधम्मो॥43॥

यह गाथा अर्थरूप से तो दोनों ही चूर्णियों में हैं, किन्तु गाथारूप से अधूरी या पूरी एक में भी नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों चूर्णिकारों और टीकाकार हरिभद्र ने निर्युक्ति-गाथाएँ समान रूप से उद्धृत नहीं की हैं। दोनों चूर्णिकारों में एतद्विषयक काफी समानता है, जबकि हरिभद्रसूरि इन दोनों से इस विषय में बहुत भिन्न हैं। इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने के लिए विशेष अनुशीलन की आवश्यकता है।

निशीथ-विशेषचूर्णि

जिनदासगणिकृत प्रस्तुत चूर्णि[६५] मूल सूत्र, निर्युक्ति एवं भाष्यगाथाओं के विवेचन के रूप में है। इसकी भाषा अल्प संस्कृत-मिश्रित प्राकृत है। प्रारंभ में पीठिका है जिसमें निशीथ की भूमिका के रूप में तत्संबद्ध आवश्यक विषयों का व्याख्यान किया गया है। सर्वप्रथम चूर्णिकार ने अरिहंतादि को नमस्कार किया है तथा निशीथचूला के व्याख्यान का संबंध बताया है--

नमिऊणऽरहंताणं सिद्धाण य कम्मचक्कमुक्काणं।
सयणिसिनेहविमुक्काण सव्वसाहूण भावेण॥1॥
सविसेसायरजुत्तं, काउ पणामं च अत्थदायिस्स।
पज्जुण्णखमासमणस्स, चरण-करणाणुपालस्स॥2॥
एवं कयप्पणामो, पकप्पणामस्स विवरणं वन्ने।
पुव्वायरियकयं चिय, अहं पि तं चेव उ विसेसा॥3॥
भणिया विमुत्तिचूला, अहुणावसरो णिसीह चूलाए।
को संबंधो तस्सा, भण्णइ इणमो णिसामेहि॥4॥

इन गाथाओं में अरिहंत, सिद्ध और साधुओं को सामान्य रूप से नमस्कार किया गया है तथा प्रद्युम्न क्षमाश्रमण को अर्थदाता के रूप में विशेष नमस्कार किया गया है। निशीथ का दूसरा नाम प्रकल्प भी बताया गया है।

प्रारंभ में चूलाओं का विवेचन करते हुए चूर्णिकार ने बताया है कि चूला छह प्रकार की होती है। उसका वर्णन जिस प्रकार दशवैकालिक में किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए?[६६] इससे सिद्ध होता है कि निशीथचूर्णि दशवैकालिकचूर्णि के बाद लिखी गई है। इसके बाद आचार का स्वरूप बताते हुए आचार्य ने आचारादि पाँच वस्तुओं की ओर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्देश किया है-आचार, अग्र, प्रकल्प, चूलिका और निशीथ।[६७] इन सबका निक्षेप-पद्धति से विचार करते हुए निशीथ का अर्थ इस प्रकार बताया गया है--निशीथ इति कोऽर्थः? निशीथ-सद्दपट्टीकरणत्थं वा भण्णति--

जं होति अप्पगासं तं तु णिसीहं ति लोगसंसिद्धं।
जं अप्पगासधम्मं, अण्णं पि तयं निशीधं ति।।

जमिति अणिदिट्ठं। होति भवति। अप्पगासमिति अंधकारं। जकारणिद्देसे तगारो होइ। सद्दस्स अवहारणत्थे तुगारो। अप्पगा सवयणस्स णिण्णयत्थे णिसीहंति। लोगे वि सिद्धं णिसीहं अप्पगासं। जहा कोइ पावासिओ पओसे आगओ, परेण बितिए दिणे पुच्छिओ कल्ले कं वेलमागओ सि? भणति णिसीहे त्ति रात्रावित्यर्थः।[६८] निशीथ का अर्थ है अप्रकाश अर्थात् अंधकार। अप्रकाशित वचनों के निर्णय के लिए निशीथसूत्र है। लोक में भी निशीथ का प्रयोग रात्रि-अंधकार के लिए होता है। इसी प्रकार निशीथ के कर्मपंकनिषदन आदि अन्य अर्थ भी किए गए हैं। भावपंक का निषदन तीन प्रकार का होता है--क्षय, उपशम और क्षयोपशम। जिसके द्वारा कर्मपंक शांत किया जाए वह निशीथ है।[६९]

आचार का विशेष विवेचन करते हुए चूर्णिकार ने निर्युक्ति -गाथा को भद्रबाहु स्वामिकृत बताया है।[७०] इस गाथा में चार प्रकार के पुरुष प्रतिसेवक बताए गए हैं जो उत्कृष्ट, मध्यम अथवा जघन्य कोटि के होते हैं। इन पुरुषों का विविध भंगों के साथ विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसी प्रकार स्त्री और नपुंसक प्रतिसेवकों का भी स्वरूप बताया गया है। यह सब निशीथ के व्याख्यान के बाद किए गए आचारविषयक प्रायश्चित्त के विवेचन के अंतर्गत है। प्रतिसेवक का वर्णन समाप्त करने के बाद प्रतिसेवना और प्रतिसेवितव्य का स्वरूप समझाया गया है। प्रतिसेवना के स्वरूप वर्णन में अप्रमादप्रतिसेवना, सहसात्करण, प्रमादप्रतिसेवना, क्रोधादि कषाय, विराधनात्रिक, विकथा, इंद्रिय, निद्रा और अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन किया गया है। निद्रा-सेवन की मर्यादा की ओर निर्देश करते हुए चूर्णिकार ने एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें यह बताया गया है कि आलस्य, मैथुन, निद्रा, क्षुधा और आक्रोश-ये पाँचों सेवन करते रहने से बराबर बढ़ते जाते हैं-[७१]

पञ्च वर्द्धन्ति कौन्तेय! सेव्यमानानि नित्यशः।
आलस्यं मैथुनं निद्रा, क्षुधाऽऽक्रोशश्च पञ्चमः।।

स्त्यानर्द्धि निद्रा का स्वरूप बताते हुए चूर्णिकार कहते हैं कि जिसमें चित्त थीण अर्थात् स्त्यान हो जाए-कठिन हो जाए-जम जाए वह स्त्यानर्द्धि निद्रा है। इस निद्रा का कारण अत्यंत दर्शनावरण कर्म का उदय है -- इद्धं चित्तं तं थीणं जस्स अच्चंतदरिसणावरणकम्मोदया सो थीणद्धी भण्णति। तेण य थीणेण ण सो किंचि उवलभति।[७२] स्त्यानर्द्धि का स्वरूप विशेष स्पष्ट करने के लिए आचार्य ने चार प्रकार के उदाहरण दिए हैं-पुद्गल, मोदक, कुंभकार और हस्तिदंत। तेजस्काय आदि की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने 'अस्य सिद्धसेनाचार्यो व्याख्यां करोति, एतेषां सिद्धसेनाचार्यो व्याख्यां करोति, इमा पुण सागणिय णिक्खितदाराण दोण्ह वि भद्दबाहुसामिकता प्रायश्चित्तव्याख्यानगाथा, एयस्स इमा भद्दबाहुसामिकता बक्खाणगाहा' आदि शब्दों के साथ भद्रबाहु और सिद्धसेन के नामों का अनेक बार उल्लेख किया है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकायसंबंधी यतनाओं, दोषों, अपवादों और प्रायश्चित्तों का प्रस्तुत पीठिका में अति विस्तृत विवेचन किया गया है। खान, पान, वसति, वस्त्र, हलन, चलन, शयन, भ्रमण, भाषण, गमन, आगमन आदि सभी आवश्यक क्रियाओं के विषय में आचारशास्त्र की दृष्टि से सूक्ष्म विचार किया गया है।

प्राणातिपात आदि का व्याख्यान करते हुए चूर्णिकार ने मृषावाद के लौकिक और लोकोत्तर--इन दो भेदों का वर्णन किया है तथा लौकिक मृषावाद के अंतर्गत मायोपधि का स्वरूप बताते हुए चार धूर्तों की कथा दी है। इस धूर्ताख्यान के चार मुख्य पात्रों के नाम हैं-शशक, एलाषाढ, मूलदेव और खंडपाणा।[७३] इस आख्यान का सार भाष्यकार ने निम्नलिखित तीन गाथाओं में दिया है--

सस-एलासाढ मूलदेव खंडा य जुण्णउज्जाणे।
सामत्थणे को भत्तं, अक्खातं जो ण सद्दहति।।294।।
चोरभया गावीओ, पोट्टलए बंधिऊण आणेमि।
तिलअइरुढकुहाडे, वणगय मलणा य तेल्लोदा।।295।
वणगयपाटण कुंडिय, छम्मासा हत्थिलग्गणं पुच्छे।
रायरयग मो वादे, जहिं पेच्छइ ते इमे वत्था।।296।।

चूर्णिकार ने इन गाथाओं के आधार पर संक्षेप में धूर्तकथा देते हुए लिखा है कि शेष बातें धुत्तक्खाणग (धूर्ताख्यान) के अनुसार समझ लेनी चाहिए--सेसं धुत्तक्खाणगानुसारेण णेयमिति।[७४] यहाँ तक लौकिक मृषावाद का अधिकार है। इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद लोकोत्तर मृषावाद का वर्णन है। इसी प्रकार अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, रात्रिभोजन आदि का वर्णन किया गया है। यह वर्णन मुख्यरूप से दो भागों में विभाजित है। इनमें से प्रथम भाग दर्पिकासंबंधी है, दूसरा भाग कल्पिकासंबंधी। दर्पिकासंबंधी भाग में तत्तद्विषयक दोषों का निरूपण करते हुए उनके सेवन का निषेध किया गया है जबकि कल्पिकासंबंधी भाग में तत्तद्विषयक अपवादों का वर्णन करते हुए उनके सेवन का विधान किया गया है। ये सब मूलगुणप्रतिसेवना से संबद्ध हैं। इसी प्रकार आचार्य ने उत्तरगुणप्रतिसेवना का भी विस्तार से व्याख्यान किया है। उत्तरगुण पिण्डविशुद्धि आदि अनेक प्रकार के हैं। इनका भी दर्पिका और कल्पिका के भेद से विचार किया गया है।

पीठिका की समाप्ति करते हुए इस बात का विचार किया गया है कि निशीथपीठिका का यह सूत्रार्थ किसे देना चाहिए और किसे नहीं। अबहुश्रुत आदि निषिद्ध पुरुषों को देने से प्रवचन-घात होता है। अतः बहुश्रुत आदि सुयोग्य पुरुषों को ही निशीथपीठिका का यह सूत्रार्थ देना चाहिए।[७५] यहाँ तक पीठिका का अधिकार है। इसके आगे निशीथसूत्र और भाष्यगाथाओं का विश्लेषण करते हुए उनकी विषयवस्तु का विवरण दिया गया है। इस पर विशेष विवेचन हेतु पं. दलसुख भाई मालवणिया की पुस्तक 'निशीथ एक अध्ययन' देखनी चाहिए।

दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि

यह चूर्णि[७६] मुख्यतया प्राकृत में है। कहीं-कहीं संस्कृत -शब्दों अथवा वाक्यों के प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। चूर्णि का आधार मूल सूत्र एवं निर्युक्ति है। प्रारंभ में चूर्णिकार ने परंपरागत मंगल की उपयोगिता का विचार किया है। तदनन्तर प्रथम निर्युक्ति-गाथा का व्याख्यान किया है--

वंदामि भद्दबाहुं, पाईणं चरमसयलसुअनाणिं।
सुत्तस्स कारगमिसिं, दसासु कप्पे अ ववहारे॥1॥

भद्दबाहु नामेणं, पाईणो गोत्तेणं, चरिमो अपच्छिमो, सगला इंचोद्दसपुव्वाइं। किं निमित्तं नमोक्कारो तस्स कज्जति? उच्यते- जेण सुत्तस्स कारओ ण अत्थस्स, अत्थो तित्थगरातो पसूतो। जेण भण्णति-अत्थं भासति अरहा...। इसके बाद श्रुत का वर्णन किया गया है। तदनन्तर दशाश्रुतस्कन्ध के दस अध्ययनों के अधिकारों पर प्रकाश डालते हुए उनका क्रमशः व्याख्यान किया गया है। व्याख्यानशैली सरल है। मूल सूत्रपाठ और चूर्णिसम्मत पाठ में कहीं-कहीं थोड़ा-सा अंतर दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के रूप में कुछ शब्द नीचे उद्धृत किए जाते हैं। ये शब्द आठवें अध्ययन कल्प के अंतर्गत है-[७७]

सूत्रांक	सूत्रपाठ	चूर्णिपाठ
३	पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि	पुव्वत्तावरत्तंसि
१४	मुइंग	मुरव
६१	पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं जिय	पट्ठेहिं णिउणेहिं जिय
६२	उण्होदएहि य	—
१०७	पित्तिज्जे	पेत्तेजए
१२२	अंतरावास	अंतरवास
१२३	अंतगडे	—
२३२	पज्जोसवियाणं	पज्जोसविए
२८१	अणट्ठाबंधिस्स	अट्ठाणबंधिस्स

इस प्रकार के पाठभेदों के अतिरिक्त सूत्र-विपर्यास भी देखने में आता है। उदाहरण के लिए इसी अध्ययन के सूत्र १२६ और १२७ चूर्णि में विपरीत रूप में मिलते हैं। इसी प्रकार आचार्य पृथ्वीचंद्रविरचित कल्पटिप्पनक में भी अनेक जगह पाठभेद दिखाई देता है।

बृहत्कल्पचूर्णि

यह चूर्णि[७८] मूल सूत्र एवं लघु भाष्य पर है। इसकी भाषा संस्कृतमिश्रित प्राकृत है। प्रारंभ में मंगल की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत चूर्णि का प्रारंभ का यह अंश दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि के प्रारंभ के अंश से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इन दोनों अंशों को यहाँ उद्धृत करने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनमें कितना साम्य है--

मंगलादीणिसत्थाणि मंगलमज्झाणि मंगलावसाणाणि। मंगलपरिग्गहिया य सिस्सा सुत्तत्थाणं अवग्गहेहापायधारणासमत्था भवंति। तानिचाऽऽदिमध्याऽवसानमंगलात्मकानि सर्वाणि लोके विराजन्ति विस्तारं च गच्छन्ति। अनेन कारणेनादौ मंगलं मध्ये मंगलमवसाने मंगलमिति। आदि मंगलग्गहणेणं तस्स स सत्थस्स अविग्धेण लहुं पारं गच्छन्ति। मज्झमंगलगहणेणं तं सत्थं थिरपरिजियं भवइ। अवसाणमंगलग्गहणेणं तं सत्थं सिस्स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसिस्सेसु अव्वोच्छित्तिकरं भवइ। तत्रादौ मंगलं पापप्रतिपेधकत्वादिदं सूत्रम्...

--बृहतकल्पचूर्णि, पृ. १.

मंगलादीणि सत्थाणि मंगलमज्झाणि मंगलावसाणाणि मंगलपरिग्गहिता य सिस्सा अवग्गहेहापायधारणासमत्था अविग्घेण सत्थाणं पारगा भवंति। ताणि य सत्थाणि लोगे वियरंति वित्थारं च गच्छति। तत्थादिमंगलेण निव्विग्घेण सिस्सा सत्थस्स पारं गच्छन्ति। मज्झमंगलेण सत्थं थिरपरिचिअं भवइ अवसाणमंगलेण सत्थं सिस्स पसिस्सेसु परिचयं गच्छति। तत्थादिमंगलं.... - दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि, पृ. १

इन दोनों पाठों में बहुत समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि के पाठ के आधार पर बृहत्कल्पचूर्णि का पाठ लिखा गया है। दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि का उपर्युक्त पाठ संक्षिप्त एवं संकोचशील है, जबकि बृहत्कल्पचूर्णि का पाठ विशेष स्पष्ट एवं विकसित प्रतीत होता है। भाषा की दृष्टि से भी दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि बृहत्कल्पचूर्णि से प्राचीन मालूम होती है। जितना बृहत्कल्पचूर्णि पर संस्कृत का प्रभाव है उतना दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि पर नहीं है। इन तथ्यों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि बृहत्कल्पचूर्णि से पूर्व लिखी गई है और संभवतः दोनों एक ही आचार्य की कृतियाँ हैं।

प्रस्तुत चूर्णि में भी भाष्य के ही अनुसार पीठिका तथा छह उद्देश हैं। पीठिका के प्रारंभ में ज्ञान के स्वरूप की चर्चा करते हुए चूर्णिकार ने तत्त्वार्थाधिगम का एक सूत्र उद्धृत किया है। अवधिज्ञान के जघन्य और उत्कृष्ट विषय की चर्चा करते हुए चूर्णिकार कहते हैं--

जावतिए त्ति जहण्णेणं तिसमयाहारगसुहुमपणगजीवावगाहणामेत्ते उक्कोसेणं सव्वबहुअगणिजीवपरिच्छित्ते पासइ दव्वादि आदिग्गहेणेणं वण्णादि तमिति खेत्तं ण पेच्छति यस्मादुक्तम् रूपिष्ववधेः (तत्त्वार्थ. 1-28) तच्चारूपि खेत्तं अतो ण पेच्छति।[७९]

अभिधान अर्थात् वचन और अभिधेय अर्थात् वस्तु इन दोनों के पारस्परिक संबंध की चर्चा करते हुए चूर्णिकार ने भाष्याभिमत अथवा यह कहिए कि जैनाभिमत भेदाभेदवाद का प्रतिपादन किया है। अभिधान और अभिधेय को कथञ्चितभिन्न और कञ्चित् अभिन्न बताते हुए आचार्य ने वृक्ष शब्द के छह भाषाओं में पर्याय दिए हैं-सक्कयं जहा वृक्ष इत्यादि, पागतं जहा रुक्खो इत्यादि। देशाभिधानं च प्रतीत्य अनेकाभिधानं भवति जधा ओदणो मागधाणं कूरो लाडाणं चोरो दमिलाणं इडाकु अंधाणं[८०]। संस्कृत में जिसे वृक्ष कहते हैं वही प्राकृत में रुक्ख, मगध देश में ओदण, लाट में कूर, दमिल-तमिल में चोर और अंध-आंध्र में इडाकु कहा जाता है।

कर्म-बंध की चर्चा करते हुए एक जगह चूर्णिकार ने विशेषावश्यकभाष्य तथा कर्मप्रकृति का उल्लेख किया है-- वित्थरेण जहा विसेसावस्सगभासे सामित्तं चेव सव्वपगडीणं को केवतियं बंधइ खवेइ वा, कत्तियं को उ त्ति जहा कम्मपगडीए।[८१] इसी प्रकार प्रस्तुत चूर्णि में महाकल्प और गोविंदनिर्युक्ति का भी उल्लेख है - तत्थ नाणे महाकप्पसुयादीणं अट्ठाए। दंसणे गोविन्दनिज्जुत्तादीणं।[८२]

चूर्णि के प्रारंभ की भाँति अंत में भी चूर्णिकार के नाम का कोई उल्लेख अथवा निर्देश नहीं है। अंत में केवल इतना ही उल्लेख है - कल्पचूर्णी समाप्ता। ग्रन्थाग्रं ५३०० प्रत्यक्षरगणनयानिर्णीतम्।[८३] ऐसी दशा में किसी अन्य निश्चित प्रमाण के अभाव में चूर्णिकार के नाम का असंदिग्ध निर्णय करना अशक्य प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

१. आर्हत आगमोनी चूर्णिओं अने तेनुं मुद्रण-सिद्धचक्र,, भा.९, अं.८, पृ. १६५

२. आवश्यकचूर्णि (पूर्वभाग), पृ. ३४१

३. दशवैकालिकचूर्णि, पृ. ७१

४. उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ. २७४

५. अनुयोगद्वारचूर्णि, पृ. १

६. जैनग्रन्थावली, पृ. १२, टि. ५

७. गणधरवाद, पृ. २११

८. गणधरवाद, प्रस्तावना, पृ. ३२-३३

९. जैन आगम, पृ. २७

10. a. A History of the Canonical Literature of the Jains, P. 191

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

b. नन्दीसूत्रचूर्णि (प्रा.टे.सो.), पृ. ८३

११. गणधरवाद, प्रस्तावना, पृ. ४४

१२. वही, वृद्धिपत्र, पृ. २११

१३. निशीथसूत्र (सन्मति ज्ञानपीठ), भा ४ : प्रस्तावना, पृ. ३४ से.

१४. जैनग्रन्थावली, पृ. १२-१३, टि. ५

१५. श्री विशेषावश्यकसत्का अमुतिगाथाः श्री नन्दीसूत्र चूर्णिः हारिभद्रीया वृत्तिश्च - श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९६६

१६. विशेषावश्यकभाष्य, गा. ३०८९ - ३१३५

१७. हरिभद्रकृतवृत्तिसहित - श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९२८

१८. इमस्स सुत्तस्स जहा नंदिचुण्णीए वक्खाणं तथा इहंपि वक्खाणं दट्ठव्वं। अनुयोगद्वारचूर्णि, पृ. १-२ तुलना - नन्दीचूर्णि, पृ १० और आगे

१९. अनुयोगद्वारचूर्णि, पृ. ३

२०. श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बरसंस्था, रतलाम, पूर्वभाग, सन् १९२८; उत्तरभाग सन् १९२९

२१. पूर्वभाग पृ. ३१, ३४१; उत्तरभाग, सन् १९२९

२२. आवश्यकचूर्णि (पूर्वभाग), पृ. ७९

२३. वही, पृ. ८५

२४. वही, पृ. ८७ - ९१

२५. वही, पृ. १२१

२६. देखिए - आवश्यकनिर्युक्ति, गा. १४०-१४१

२७. आवश्यकचूर्णि (पूर्वभाग), पृ. १४७

२८. देखिए - आवश्यक निर्युक्ति, गा. ३३५-४४०

२९. आवश्यक चूर्णि (पूर्व भाग), पृ. २४५

३०. वही, पृ. ४२७ (निह्नववाद के लिए देखिए - विशेषावश्यकभाष्य, गा. २३०६-२६०९)

३१. आवश्यक चूर्णि (उत्तर भाग), पृ. ९

३२. वही, पृ. २०

३३. वही, पृ. २०

३४. वही, पृ. ५२

३५. वही

३६. वही, पृ. १२०

३७. दस उद्देसकाला दसाण कप्पस्स ति छच्चेव। दस चेव ववहारस्स होंति सव्वेवि छब्बीसं।। पृ. १४८

३८. वही, पृ. १५७-५८

३९. वही, पृ. २०२

४०. वही, पृ. २४६

४१. वही, पृ. २४८

४२. वही, पृ. २४९

४३. वही, पृ. ३२५

४४. श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी, श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९३३

४५. दशवैकालिकचूर्णि, पृ. ७१

४६. वही, पृ. १८४, १८७, २०२, २०३

४७. तरंगवती, पृ. १०६, ओघनिर्युक्ति - पृ. १७५, पिण्डनिर्युक्ति, पृ. १७८ आदि

४८. श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था रतलाम, सन् १९३३

४९. उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ. २७४

५०. श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी, श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९४१

५१. वही

५२. विषमपदव्याख्यालंकृतासिद्धसेनगणिसन्दृब्ध-बृहच्चूर्णिसमन्वित जीतकल्पसूत्र, सम्पादक-मुनिजिनविजय, पृकाशक - जैनसाहित्यसंशोधक-समिति, अहमदाबाद, सन् १९२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. अहवा बितियचुन्निकाराभिपायेण चत्तारि.... जीतकल्पचूर्णि, पृ. २३

५४. वही, पृ. ३,४,२१

५५. वही, पृ. ४

५६. वही, पृ. ३०

५७. प्रस्तुत चूर्णि की हस्तलिखित प्रति श्री पुण्यविजय जी की कृपा से प्राप्त हुई अतः लेखक मुनिश्री का अत्यन्त आभारी है। यह प्रति जैसलमेर ज्ञानभण्डार से प्राप्त प्राचीन प्रति की प्रतिलिपि है।

५८. दशवैकालिकचूर्णि, पृ. २

५९. वही, पृ. ७-८

६०. निर्युक्तिगाथा - जीवाजीवाहिगमो चरित्तधम्मो तहेव जयणा य। उवएसो धम्मफलं छज्जीवणियाइ अहिगारा ।।

६१. वही, पृ. १४६-४७

६२. वही, पृ. ४९७

६३. गाथा-संख्या का आधार मुनिश्री पुण्यविजयजी द्वारा तैयार की गई दशवैकालिक की हस्तलिखित प्रति है।

६४. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रंथांक - ४७

६५. सम्पादक-उपाध्याय श्री अमरचन्द व मुनि श्रीकन्हैया लाल जी, सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा, सन् १९५७-१९६०

निशीथ: एक अध्ययन - पं. दलसुख मालवणिया सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, सन् १९५९

६६. सा य छव्विहा - जहा दसवेयालिए भणिया तहा भाणियव्वा। प्रथम भाग, पृ. २

६७. भाष्यगाथा - ३

६८. निशीथविशेषचूर्णि, पृ. ३४

६९. वही, पृ. ३४-३५

७०. एसा भद्दबाहुसामिकता गाहा -वही, पृ. ३८

७१. वही, पृ. ५४

७२. वही, पृ. ५५

७३. वही, पृ. १०२

७४. वही, पृ. १०५, आचार्य हरिभद्रकृत धूर्ताख्यान का आधार यह प्राचीन कथा है।

७५. वही, पृ. १६५-१६६

७६. इस चूर्णि की हस्तलिखित प्रति श्री पुण्यविजयजी की कृपा से प्राप्त हुई अतः उनका अति आभारी हूँ। इसका आठवाँ अध्ययन कल्पसूत्र के नाम से अलग प्रकाशित हुआ है जिसमें मूलसूत्रपाठ, निर्युक्ति, चूर्णि और पृथ्वीचन्द्राचार्यविरचित टिप्पनक सम्मिलित हैं। सम्पादक - मुनि श्री पुण्यविजयजी, गुजराती भाषान्तर - पं. बेचरदास जीवराज दोसी, चित्रविवरण - साराभाई मणिलाल नवाब, प्राप्तिस्थान - साराभाई मणिलाल नवाब, छीपा मावजीनी पोल, अहमदाबाद, सन् १९५२

७७. मुनि श्रीपुण्यविजयजी द्वारा स्वीकृत पाठ के आधार पर इन शब्दों का संग्रह किया गया है।

७८. इस चूर्णि की हस्तलिखित प्रति के लिए मुनि श्रीपुण्यविजयजी का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपनी निजी संशोधित प्रति मुझे देने की कृपा की।

७९. वही, पृ. १७

८०. वही, पृ. २५

८१. वही, पृ. ३७

८२. वही, पृ. १३८३

८३. वही, पृ. १६२०

- जैन साहित्य के
वृहद् इतिहास से साभार।
- सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org